लतिका

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

वर्तमान कवियो की कविता-पुस्तके

(क) प० श्रीधर पाठक की

आराध्य शोकांजलि	।≡)
ऊजड़ ग्राम	।=)
एकांतवासी योगी	≡)
काश्मीर सुखमा	=)
गोखले-गुणाष्टक	=)
गोखले प्रशस्ति	=)
जगत् सचाई सार	-)
देहरादून	।=)
भारत-गीत	।।।=), १=)
वनाष्टक	=)
श्रांत पथिक	।)

(ख) प० अयोध्यासिहजी उपाध्याय की

काव्योपवन	।।।)
चुभते चौपदे	१।।)
चोखे चौपदे	१।।)
पद्य प्रसून	१।।)
पद्य प्रमोद	।।।)
प्रिय प्रवास	२।)
बाल-विलास	।)

(ग) बा० मैथिलीशरण गुप्त की

अनघ	।।।)
किसान	।=)
गुरुकुल	२)
जयद्रथ वध	।।)
पत्रावली	।।)
पलासी का युद्ध	१।।)
पचवटी	।=)
भारत भारती	१) २)
मेघनाद-वध	३।।)
रग में भग	।)
वक-सहार	।=)
विरहणी व्रजांगना	।)
वीरागना	।।।)
विषाद	।-)
वैतालिक	।)
शकुतला	।=)
शक्ति	।)
स्वदेश सगीत	।।।)
हिंदू	।।) १)
त्रिपथगा	१।।)

सञ्चालक गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

गंगा पुस्तकमाला का १ ३वाँ पुष्प

लतिका

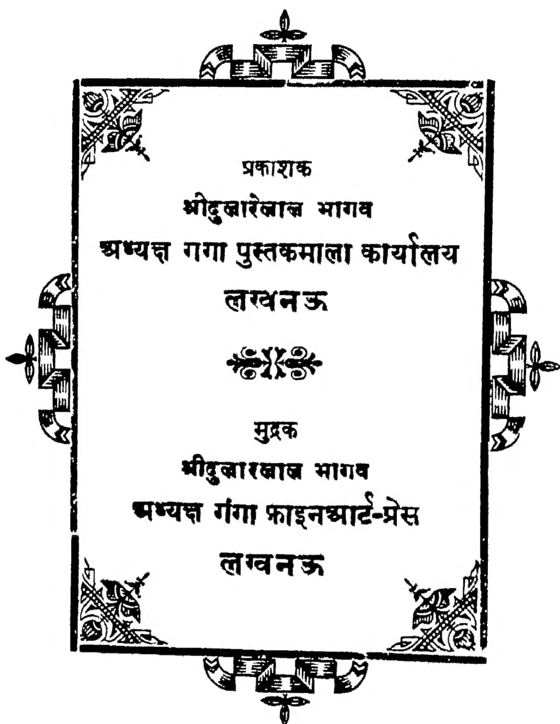
लेखक
श्रीगुलाबरत्न वाजपेयी "गुलाब"



प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
प्रकाशक और विक्रेता
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

ल्द १॥)]   १९८६ वि०   [अजिल्द १)



प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा पुस्तकमाला कार्यालय

लखनऊ



मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

समर्पण

उस महाशक्ति

के

कर-कमलों

मे,

जिसकी कृपा से

मैं

कविता लिखने के लिये

बाध्य हूँ ।

"गुलाब"

रहस्यवाद कवि और कविता

'रहस्यवाद' ससार के रहस्यों का उद्‌घाटन और सत्य तत्त्व का अन्वेषण है। परमपिता परमात्मा की सत्य सृष्टि मे जो आनद प्रवाह प्रवाहित हो रहा है, उसके चारों ओर रहस्यवाद की पवित्र लहरें आनद नृत्य कर रही हैं। आनद ही से विश्व की उत्पत्ति है। आनदमय विश्व में ही विश्वेश्वर आनद-मग्न है। वह जैसा सत्य और मगलमय है, वैसा ही सु दर भी है। सौंदर्य द्वारा ही वह आत्मप्रकाश की किरणें बिखेर रहा है। आत्मप्रकाश के लिये जितनी आवश्यकता ब्रह्म को है उतनी ही कवि को भी। काव्य सृष्टि का एकमात्र उद्देश्य ही है सौंदर्य सृष्टि !!!

जब हम किसी खूबसूरत बगीचे मे टहलते हैं, तो अकस्मात् हमारी दृष्टि किसी फूले फूल की ओर चली जाती है, उस समय हमारा ध्यान न लहराते हुए वृक्षों की ओर रहता है और न घुँघराले पल्लव दल की ओर। उसका कारण यह है, सौंदर्य सृष्टि में आत्मप्रकाश अद्भुत रगीन रूप धारण कर आनद में मुसकिराता है। यहीं हम सत्य स्वरूप के दर्शन करते हैं। सौंदर्य-सरोवर मे आत्मा अपना ही प्रतिबिंब देखती है।

जब ऋतुराज वसत विश्व-वाटिका मे प्रवेश करते हैं, ससार अद्भुत सौंदर्य-मूर्ति धारण कर लेता है। सर्वत्र रग बिरगे फूल

खिलते है। सहस्रों कुसुम-सुंदरियाँ षोडश शृंगार कर वसंत समीर के साथ मयूर-नृत्य करती हैं। भ्रमर गुंजारते है। कोकिलाएँ कूकती हैं, विहगों की मधुर संगीत ध्वनि से प्राण आनंद में मतवाले होकर झूमते हैं। यह आनंद आंतरिक आनंद है, इस अभूतपूर्व आनंद में हम वसंत की इस अद्भुत रहस्य-मूर्ति का दर्शनकर धन्य हो जाते हैं। शरत्काल की पूर्णिमा में कोई स्वर्गीय रहस्य-मूर्ति पृथ्वी पर आनंद अमृत बरसाती है। इस आनंदमयी रात्रि में हमारा हृदय अनायास ही अभिसार पथ की ओर अग्रसर होता है। अहा! उसी समय हम संसार की सत्य, सुंदर और मंगलमय रहस्य-मूर्ति पर अपने भावना-कुसुम चढाते हैं, और भक्ति भाव से बारंबार नमस्कार करते है। यही है रहस्यवाद! रहस्यवाद हमारी समस्त दुर्बलताओं को दूरकर मुक्ति पथ की ओर अग्रसर करता है। वह भय को पास तक नहीं फटकने देता। वह जड़ में जीवन संचार करता है। रहस्यवाद वास्तव में संसार का मंत्र-गुरु है।

सौंदर्य रहस्य के ही द्वारा कवि की सृष्टि है। सौंदर्य-रहस्य को ही लेकर कवि भावुक और प्रेमी है। रहस्यवादी कवि शरत्पूर्णिमा की भाँति काव्य-सुधा-रस से संसार वाटिका को सींचता है। रहस्यवाद की अमृत-लहरें पवित्र और सुंदर हैं।

कवि किसे कहते हैं? कवि क्या है? 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' कवि स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल और रसातल, सर्वत्र अपने 'मैं' का प्रसार कर एक महान् उल्लास प्रकट

करता है। वह भ्रमर बनकर विश्व-वाटिका के सुगंधित फूलों पर आनद-मधु पीता है। तितली बनकर उडता है। बादल की तरह दौडता है और बिजली की तरह कडकता है। कवि सौंदर्य रहस्य के चरमोत्कष द्वारा ही ससार चित्त को शुद्ध करता है। वह समस्त ससार का प्रेमी है। उसके जीवन का आधार अनंत प्रम है। कवि भाव को जितना ही पकडना चाहता है वह उसे उतना ही ऊपर खींचता है। यही है कवि की अतृप्ति ! और यही है रहस्यवाद ! कवि ने जब सोचा यहाँ अत है—भाव नेत्रो ने उसी समय देखा, यहाँ तो आरभ-मात्र है। कवि ससार को अपने मे, और अपने को ससार मे देखता है। भट्ट त्रिविक्रम का यह श्लोक कितना सजीव है ?—

"कि कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मत ,
परस्य हृदये लग्न न घूर्णयति यच्छिर ।"

उस कवि की कविता से क्या, उस धनुर्द्धर के तीर से क्या, जो दूसरों के हृदय म लगने पर उसका मस्तिष्क न घुमा दे। कविता वही है जिसके कलेजे मे लगते ही सिर घूमने लगे। और कवींद्र-वाणी—

"शब्दाथमात्रमपि येन विदन्ति तेऽपि
या मूर्च्छनामिव मृगा श्रवणै विवन्त ,
सरुद्धसर्वकरणप्रसरा भवन्ति
चित्रस्थिता इव कवीन्द्रगिर नुमास्तम् ।"

(जगद्धर)

जिसे शब्दार्थ का भी ज्ञान नही, वह मृग भी जिस कविता

को केवल कानों से, गान के समान, सुनकर तन्मय हो जाते हैं वाक्य और इंद्रिय ज्ञान शून्य चित्र लिखित-से हो जाते हैं, उ कवींद्र-वाणी को नमस्कार !!!

"त्रैलोक्यभूषणमणिगुणिवर्गबन्धु
ेकस्य कास्ति सविता कविता द्वितीया।"

संस्कृत-साहित्य में वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष माघ, भारवि, बाण और जयदेव, अँगरेज़ी में शेली, ब्राउनिंग कीट्स, मिल्टन, बायरन, वर्ड्सवर्थ, लाँगफ़ेलो और टेनिसन फ़ारसी में उमरख़य्याम, शेख़सादी, मौलाना रूम, फ़रीदुद्दी और हाफ़िज़, उर्दू में दाग़, जौक़, ग़ालिब, बँगला में विद्या पति, चंडीदास, मधुसूदन और रवींद्र, हिंदी में सूर, तुलसी देव, बिहारी, पद्माकर, केशव और भूषण इत्यादि महा कवियों की कविताएँ नित्य नवीन और आनंददायिनी हैं। इन महाकवियों की कविताओं में कृत्रिमता नहीं, आंतरिकता है। इनके मनोहर भावाकाश में क्षणिक अंधड़ नहीं, शा त्कौमुदी का उज्ज्वल प्रकाश है। यही कारण है, जो उक्त महाकवियों की कविताएँ संसार में हीरक हार की तरह झलमल झलक रही हैं। उक्त महाकवियों की कवित्व वारुणी पीकर कौन सहृदय भावुक नहीं झूमता? उनकी कविताओं में जो अपूर्व आनंद है, वह पढ़ते ही बनता है। पाठक विचित्र काव्यानंद से परि पूर्ण हो जाते हैं। नस-नस में बिजली दौड़ जाती है।

कवि की कविता में अक्षय धन है। प्रति दिन मनुष्य जो कुछ विनोद वार्तालाप करता है, वह कदापि शाश्वत नहीं।

सत्य दरबार में उसका मूल्य ही क्या हो सकता है ? किंतु कवि का अक्षय धन सदैव सत्य-ज्योति से प्रकाशित सुदर और मगलमय है। अतीत काल का प्रचड गौरव, उसकी श्रीवृद्धि, उसका अद्भुत सौदर्य आज दिन नष्ट हो गया है। किंतु कवि की अमर कविताएँ आज दिन भी सहृदय मानवो को मुग्ध कर रही है। कवि अपनी कृति द्वारा जिस सुवर्ण प्रदीप से साहित्य को ज्योतिर्मय बना जाते हैं—उसकी शात और समुज्ज्वल किरणें संसार के प्रत्येक गृह मे फैली रहती हैं। कवि की आत्मा अनुराग और आवेग का क्षेत्र है। उसके प्राणों की रस लिप्सा स्वाभाविक है, जो रहस्य वस्तु को अमृत-रूप में प्राप्त करती है।

कविता मे जिस चित्र का हम दर्शन करते हैं, उसमें एक अत्यत सरल, पवित्र और तीक्ष्ण सत्य का समुद्र उमडता दिखाइ देता है। सत्य की यह मूर्ति असुदर होकर भी सुदर है। कवींद्र रवींद्र कहते हैं—"कवि जब सत्य की उपलब्धि करते हैं, तब समझते हैं, सत्य का प्रकाश सहज ही सुदर है।"

महाकवि की पवित्र कल्पना सदैव स्वतत्र है। जिस वस्तु को शास्त्र नाग पाश में मजबूती से जकडे रहता है, कवि-कल्पना क्षण-मात्र मे ही उसके विकट बधनों का छिन्न भिन्न कर डालती है। कवि को कुशलता उसकी कल्पना मे ही प्रकट होती है। जो वस्तु कवि हृदय का स्पश कर लेती है, सहज ही म उसका उद्धार हो जाता है। कवि स्वय उसी वस्तु का रूप धारण कर तन्मय हो जाता है। यही उसके भावों की सृष्टि है। इस

समय उसकी लेखनी में दैवी शक्ति आ जाती है। वह कर्म बधन से मुक्त हो जाता है। क्षण-भर के लिये क्षुद्र व्यक्ति जीवन एक महान् उद्दश्य में विलीन हो जाता है। इसे ही कहते है कवि की उल्लास अवस्था या तन्मयता। इस अवस्था मे, कवि म, मनुष्योचित कर्म नहीं रह जाते। वह त्रैलोक्य पूजित देवता बन जाता है। किंतु जहाँ कवि की लेखनी बद हुई— उसे विश्व-चेतना प्राप्त हुई—वह अपने चारों ओर नज़र घुमा कर दखता है—ससार मुसकिरा रहा है। इस समय मनुष्य की समस्त दुर्बलताए उसमे व्याप्त हो जाती हैं। इस समय कवि मनुष्य है। वैसा ही मनुष्य जैसा कविता लिखने के पूर्व था। इस समय उसकी बुद्धि, उसकी स्वार्थनीति, सभी साधारण मनुष्य-जैसी है।

यह कहना कि कवि-कल्पना सत्य नही होती—भयकर भूल है। कवि कल्पना सदैव विवेक, सत्य और सुदर की सृष्टि करती है। एक अपूव व्यक्तिगत उपलब्धि को कैसे सत्य और सुदर बनाऊँ—यही कवि की चिंता है। मनुष्य हृदय द्वार बदकर अहकार के अधकार में सोता है। किंतु कवि,—कवि भावुक हृदय की सुगधित फुलवारी में प्रवेश कर भाव-कुसुम चयन करता है। यहाँ यह प्रश्न सहज ही में उत्पन्न हो सकता है कि सत्य कहते किसे हैं ? अस्तु। सत्य चाहे जो हो, किंतु वह विज्ञान की Theory धर्मशास्त्र की शासन-नीति या दर्शन का मतवाद नहीं। सत्य एक चिंतागत धारणा भी नही है—वह मनुष्य की अनुभूति मात्र है।

सत्य का सबसे बडा प्रमाण यह है कि सत्य के साथ सशय की आवश्यकता नही रहती। जिन कवियों की कीर्ति आज दिन हम गा रहे हैं, यदि वे अपनी अमूल्य कविताओं मे सत्य की सृष्टि न कर जाते, तो हम अमर सिंहासन पर उनका राजतिलक ही कैसे करते ? कवि कीट्स ने एक स्थान पर लिखा है—

' What the imagination seiges as beauty must be Truth whether it existed before or not

अथात् कल्पना द्वारा जिसे सुदर कहकर पहचानता हूँ, वह सत्य होने के लिये बाध्य है। चाहे वह अभूतपूर्व हो या भूतपूर्व। जिस स्थान पर कवि दृष्टि दुबल है—वहाँ कविता शब्द की चारु चातुरी मात्र है। वहाँ सत्य की कल्पना नही। इस श्रेणी की रचनाओं को हम नेत्रहीन प्रतिमा या प्राणहीन देह कहने में तनिक भी सकोच नही करते। ऐसे काव्य-कुसुम शीघ्र ही मुरझाकर मिट्टी में मिल जाते हैं।

कविता लिखते समय कवि को जो सबसे अधिक आनद देनेवाली वस्तु है—वह है छद। यदि कवि के भावों के साथ विशेष छद की भी सृष्टि हो जाय तो फिर क्या कहना, कविता स्वय ही पूर्ण हो जाती है। प्राण से निकले हुए छदों में कवि कविता के मैदान में निर्भय टहलता है। कभी वह जल्दी जल्दी चलता है—कभी अति धीरे। कभी वह फूलों की सुगधि में मत्त होकर झूमता है, कभी चकित होकर कोकिल

कठ झकृत मधुर सगीत सुनता है। अधिकाश नियमित छदों के फेर मे पड़कर कवि भावों की हत्या कर बैठते हैं। 'समस्या पूति' इसका सबसे ज़बरदस्त उदाहरण है।

मैंने पिगलशास्त्र का अध्ययन नही के बराबर किया है। पिंगलशास्त्र मुझे बड़ा ही नीरस और असुदर प्रतीत होता है। मैं अपनी कविताओं की सृष्टि—हृदय से उठी हुई—स्वर-लहरी मे पूर्ण करता हूँ। प्राणों म एक भयकर तूफ़ान उठता है और मैं उसे फूक ताप डालता हूँ। अलकार, नायिका-भेद, नख शिख तथा अगण-गण इत्यादि के पचडों मे पडकर मेरा हृदय, नीरस मरुस्थल म, चलने मे, सर्वथा असमर्थ है। मै नहीं जानता यह मेरी कमजोरी है या भयकर विद्रोह! इच्छा भी नहा है कि पिगल उठाकर कुछ सीखूँ।

यहाँ विद्वद्वर यह न समझ—मैं ब्रजभाषा के विरोध की आड में पिंगल और अलकार आदि को नीरस ठहरा रहा हूँ, मैं ब्रजभाषा का बहुत बड़ा प्रेमी हूँ। उसकी माधुरी मे मुझ बडा स्वाद मिलता है। बड ताव से उसे पढता हूँ। उसमे जो नशा है, वह मुझ अत्यत प्रिय है। किंतु यहाँ ब्रजभाषा का कोई सवाल नही। सवाल है अलकार इत्यादि का।

अलकार क्या है? कविता म किस अलकार की किस स्थान पर आवश्यकता है। इसे मै ज़बरदस्ती कविता मे ठूँसने का स्वप्न म भी पक्षपाती नही। अलकार एक तरह के फ़ैशन (Fashion) हैं जो भिन्न भिन्न समय म भिन्न भिन्न रूप से चलते है। जो बात आठवीं सदी मे थी, वह पद्रहवीं सदी मे न रही। जो

सोलहवीं सदी का प्रकाश था, वह बीसवीं सदी में लुप्त हो गया। एक ओर से तूफान आया और दूसरी ओर चला गया। ससार परिवर्तनशील है। उलट फेर का विचित्र तमाशा है। एक तरग उठती है, तो दूसरी तरग भी आगे बढती दिखाई देती है। एक दिन सत्ययुग था, तो एक दिन द्वापर के भी दर्शन हुए। आजकल कविता के मुख्य अलकार हैं—लहराते हुए सरस भाव।

हिदी साहित्य में इस समय भयानक क्राति हो रही है। शका समाधान, वाद विवाद, समालोचना प्रत्यालोचना इत्यादि का तुमुल कोलाहल है। छोटे बडे सभी साहित्य-सेवी, बडो लगन के साथ, ससार के लहलहाते हुए सुदर भाव कुसुम चयन कर हिदी-मदिर में मातृ-मूर्ति की पूजा कर रहे हैं। भावों की वृद्धि के साथ-साथ भाषा कली का भी विकास हो रहा है। चारों ओर मधुर शख बज रहे हैं। हिदी आज सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान हो रही है। उसे भारत को राष्ट्र भाषा होने का गौरव पद प्राप्त हो रहा है। यह बडे गर्व की बात है। उसके सेवक किसी दिन विश्व-साहित्य मे हडकप पैदा करगे—यह कहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। हिंदी भाव-गगा के भगीरथ साहित्य सेवी दीर्घजीवी हो, यही परमपिता से प्रार्थना है।

किसी भी साहित्य म, जहाँ नवीन भावा का स्रोत बहा—ससार आश्चय से देखता है, यह है क्या? समाज में प्रचड कोलाहल मच जाता है। हिदी-साहित्य के नवीन कविता-क्षेत्र मे यही बात हो रही है। निंदात्मक समालोचनाओं का

बाज़ार गर्म है। कोई रक्तरजित क़लम-कटार लेकर साहित्य मैदान म रक्त-गगा बहाने की कोशिश करता है। कोई भयकर अजगर की तरह मुख फैलाकर हिंदी के नवीन कवियो को—बरसाती मेढक समझ—एक ही अग्नि साँस म निगल जाना चाहता है। कोई अँगरेज़ी और बँगला की जूठन चिल्लाकर घृणा से नाक सिकोडता है। पत्थरो की वर्षा हो रही है! वज्रपात हो रहा है!

किंतु सच्चा कवि क्या इन भयकर उत्पातों से डरकर किसी गुप्त गुफा मे मुख छिपा लेगा? हर्गिज़ नही! पाडित्य और कवित्व मे ज़मीन आसमान का अतर है। मरु हृदय प्रचड पडित अपनी प डित्य सिल पर किसी दिन भी—किसी साहित्य मे भी—सच्चे कवियों को चटनो बनाकर नहीं चाट सके। हिंदी की नवीन काविता का निर्मल नियागरा प्रपात सदैव झर झर ध्वनि के साथ झरता रहेगा। रास्ते में इसके बाधक कितने हो पहाड मरुस्थल, काँटों से भरे हुए ऊबड खाबड़ पथ, पत्र पुष्प हीन विटप और ककड़ पत्थर हागे, किंतु इस की प्रचड धाराओं म पड़कर सभी धूलि कण की तरह बह जायँगे। अटल पर्वत आर भयकर कगारों को काटता—चीरता, फाड़ता, प्रचड कोलाहल और उत्पात करता हुआ—तीखी चट्टाना से टकराता हुआ—नवीन कविता का यह प्रचड प्रवाह विश्व-साहित्य-समुद्र में, भयकर किंतु पवित्र लहरों के साथ, सदैव लहरायगा। कौन कहता है, मैं इस प्रचड धारा को रोक दू गा? किसकी भुजाओं मे इतनी भयकरी ताक़त

बाज़ार गर्म है। कोई रक्तरंजित कलम-कटार लेकर साहित्य मैदान में रक्त-गंगा बहाने की कोशिश करता है। कोई भयंकर अजगर की तरह मुख फैलाकर हिंदी के नवीन कवियों को—बरसाती मेंढक समझ—एक ही अग्नि साँस में निगल जाना चाहता है। कोई अँगरेज़ी और बँगला की जूठन चिल्लाकर घृणा से नाक सिकोड़ता है। पत्थरों की वर्षा हो रही है! वज्रपात हो रहा है!

किंतु सच्चा कवि क्या इन भयंकर उत्पातों से डरकर किसी गुप्त गुफा में मुख छिपा लेगा? हर्गिज़ नहीं! पांडित्य और कवित्व में ज़मीन आसमान का अंतर है। मरु हृदय प्रचंड पंडित अपनी पांडित्य सिल पर किसी दिन भी—किसी साहित्य में भी—सच्चे कवियों को चटनी बनाकर नहीं चाट सके। हिंदी की नवीन कविता का निर्मल नियागरा प्रपात सदैव झर झर ध्वनि के साथ झरता रहेगा। रास्ते में इसके बाधक कितने ही पहाड़ मरुस्थल, काँटों से भरे हुए ऊबड़ खाबड़ पथ, पत्र पुष्प हीन विटप और कंकड़ पत्थर होंगे, किंतु इस की प्रचंड धाराओं में पड़कर सभी धूलि कण की तरह बह जायँगे। अटल पर्वत और भयंकर कगारों को काटता—चीरता, फाड़ता, प्रचंड कोलाहल और उत्पात करता हुआ—तीखी चट्टानों से टकराता हुआ—नवीन कविता का यह प्रचंड प्रवाह विश्व साहित्य समुद्र में, भयंकर किंतु पवित्र लहरों के साथ, सदैव लहरायगा। कौन कहता है, मैं इस प्रचंड धारा को रोक दूँगा? किसकी भुजाओं में इतनी भयंकरी ताकत

है ? किस अग्नि सॉंस म इतनी प्रचड शक्ति है जो वह ऋषि अगस्त्य की तरह इस उमड़ते हुए महासागर को एक हो सॉंस मे सोख लेगा ? भूल है भूल !!! भ्राति की अधी दुनिया का आनद लेनेवाले अरसिक-हृदय सावधान ! कवि ससार का मत्र-गुरु है।

कवि सर्वत्र सत्य शिव सु दर की वीणा बजा रहा है। रहस्य-वादी कवियों की अमर-सुमधुर ताने आज दिन ससार भर मे गूँज रही हैं—प्रलय-काल तक गूँजती रहेगी। हिंदी कविता साहित्य का यह क्रातिकारी युग चिरजीवी रहे। इस युग की अज्ञात सगीत-स्वर-लहरी हमारी आशा और भाव नाओं को शुद्ध प्रदेश से खींचकर विराट् रहस्यालोक मे ले जाती है। रहस्यवादी कवियो का जीवन सदैव आनदमय और विजयी है। ईट पत्थरों की वर्षा उनके लिय फूला की वर्षा है। यही उनकी जय माला है। रहस्यवाद का प्रवाह सु दर, सत्य और मगलमय है।

में जानता हू, हिंदी के वर्तमान लेखक एक होकर भी अपनी प्रचड शक्ति द्वारा करोड़ बनेंगे—और अपने करोड करोड़ कर कमलो द्वारा हिदी मदिर मे श्रद्धाजलि समपित करेंगे। वे विघ्नों के कटक-जाल, अपने प्रचड पैरों से—धूलि-कण की तरह रगड डालगे। हिंदी के नवीन कवि और लेखक अब प्राचीन बधनों को छिन्न भिन्न कर नवीन साहित्या दर्श उपस्थित करगे। त्रिभुवन की कोई भी शक्ति उन्हे नष्ट नहीं कर सकती। ससार के जिस साहित्य में जब जब भयकर

उथल पुथल मची है, तभी वह साहित्य उन्नति के शिखर पर चढ सका है, अन्यथा गधहीन कुसुम की तरह मुरझाकर रास्ते मे गिर पडा है, भूलकर भी किसी पथिक ने उसकी ओर नहीं देखा ! हिंदी साहित्य का भविष्य उज्ज्वल, अति उज्ज्वल और महान् उज्ज्वल है । बोलो—'राष्ट्र-भाषा हिंदी की जय !' 'क्रातिकारी युग की जय !!'

हिंदी अपने विद्रोही युग के साथ चिरजीवी रहे । यही ईश्वर से प्राथना है । इति ।

भारती-भवन
१४, बिंदुपालित लेन, कलकत्ता
विजया दशमी १६८६ } "गुलाब"

पखड़ियाँ

लतिका

मै क्या हूँ ?

(१)

मैं हूँ न देव, दानव, दिवेश, किन्नर, गधर्व, अमर अनग,
मैं दीप-शिखा हूँ मद मद, जिसमें जलते अगणित पतग।
मै वह भय हूँ, जिसको विलोक—
काँपती धरा, मरता निर्भय, कर लेता बद नयन त्रिलोक।

(२)

मैं वह रण हूँ, जिसमे अनेक नाचते प्रेत कर अट्टहास,
मैं चद्रहास की धार, मृत्यु, मै हूँ तृष्णा की प्रबल प्यास।
मै हूँ मतग मद पूर्ण चाल,
मैं सावधान, मैं इद्र-वज्र, मै जहर उगलता हुआ व्याल।

(३)

मैं हूँ भीषण एकात वास, मै बडवानल, मैं हूँ अनत,
मैं भुवन-भास्कर, विश्व शत्रु, मैं हूँ निदाघ, मै हूँ दिगत।
मै वन तरुवर-दल बिच बबूल,
मैं शिव-लोचन, उन्माद-नाद, मै रण-तांडव, मै हर त्रिशूल।

(४)

मैं गुप्त-गुफा, मै कटक-वन, मैं प्रबल वह्नि, द्रत-गति समीर,

मैं हूँ न अमृत, मैं कालकूट, मै हूँ विधवा की छिपी पीर।
मै हूँ धवलागिरि-शिखर एक,
मै पद्माकर, केशव न कभी, भूषण-कविता की एक टेक।

(५)

मै वीर शिवाजी का बल हूँ, मै छत्रसाल की हूँ नस-नस,
मैं रुद्राणी का रौद्र कोप, मै कमलासन का एक दिवस।
मैं यम हूँ, मै केतकी पत्र,
मैं श्मशान की ज्वलित चिता, मै विष्णु चक्र, मै अटल छत्र।

(६)

मैं भक्त भगीरथ का उपास्य, मै अरि-मर्दन, मै हूँ विरोध,
मैं हूँ विभति, मै हूँ विलाप, मै दुर्वासा का तेज, क्रोध।
सीता-सुहाग, मै प्रलय गीत,
मै दमयती की तीव्र दृष्टि, मै सावित्री-हठ, मैं अतीत।

(७)

मथरा-चाल, केकयी द्वष, मै श्रवण पिता-कृत प्रबल शाप,
मैं हूँ दशरथ की व्यथा मौन, मै रामचद्र का विपिन वास।
मैं अंगद पद, मैं अचल अटल,
मैं मेघनाद की कठिन शक्ति, मैं हूँ लक्ष्मण-स्वभाव चचल।

(८)

मैं हूँ पाडव दल-बल सचित, मै हूँ पाचाली का दुकूल,
मैं दुर्योधन अतस्तल का हूँ एक भयकर गुप्त शूल।
मैं भीष्मवीर का प्रण कठोर,

मैं हूँ खौलता हुआ शोणित, मै कवि-मानस-सागर हिलोर।

(९)

मैं हूँ छोटा सा एक मत्र, मैं कामदेव का अध राग।
मैं शक्ति देवि का हूँ इगित, मै बौद्ध धम, मै हूँ विराग।
मै हूँ सागर, मै प्रबल ज्वार,
मैं हूँ निशीथ अभिसार अभय, मै हूँ अमूल्य, मैं अलकार।

(१०)

मै रक्ताजलि, मै हू अटूट मै हूँ अदभ्र विभ्राट ठाट,
मैं अद्वितीय, मैं हूँ अगाध, मै हू अनन्य, अनुभव विराट।
मै हूँ उल्का, मै उष्ण देश,
मैं नर-ककाल, उजान कटक, मैं काल रात्रि, मै काल-वेष।

(११)

मैं हूँ बादल-दल कृष्ण वर्ण, मैं हूँ गर्जन-तर्जन, विकार,
मैं हूँ तुषारमय एक भोर, मैं हूँ न मूर्ख, सघनाधकार।
मै हूँ चातक के लिये उपल,
मै चपल कड़कती चल बिजली, मै सर्वनाश, मै हूँ पागल।

(१२)

मैं जापानी भूकप नव्य, मैं हूँ प्रचड आघात घात,
मैं हूँ नन्ही-सी नदी नही, मैं हूँ नियगारा का प्रपात।
मैं तप्त ज्येष्ठ, बीभत्स छोर,
मैं ऊबड़-खाबड पथ उजाड़, पथिकों के प्रति मैं प्रकट चोर।

(१३)

मैं हूँ दरिद्र-दुख-गर्म अश्रु, मैं प्रतिहिंसा प्रण, प्रलय-नाद,
मैं क्रूर केसरी अभय मत्त, मैं हू नटखट, मैं हूँ फसाद।
मैं हूँ न सरल साहित्य-जोश,
मैं महाकठिन, मैं महाजटिल, मैं महाशाद, ससार कोष।

(१४)

मैं रक्त कुंड, मैं धुआँधार, मै ऋषि-मुनियों का सफल होम,
मैं हूँ विप्लव, मैं व्याधि-व्यूह, मै हूँ रोमाचित रोम रोम।
मैं हूँ नवीन आदर्श हर्ष,
मैं हूँ विरही काँपता एक, मै हूँ भविष्य, भीषण विमर्श।

प्रभात किरण

आनंद उच्छ्वसित मन महान,
विकसित प्रसून-दल मधुप-गान।
सुरभित सुदर उपवन सुजान,
निरुपम नवीन छवि, विहग-तान।
शैशव, किशोर, यौवन हिलोर,
सुख का न दिखाता ओर-छोर।
परिणय धन भूली कुसुम-कोर,
डहडही सुहाती लता-डोर।

है कहीं राग का नहीं नाम,
ध्वनि प्रतिध्वनि शकर, कृष्ण, राम।
अबर मे बिखरे मृदु कुमार,
हैं टहल रहे बादल उदार।
नव सूर्यमुखी दल फूल-फूल,
नन्हे विटपों पर झूल-झूल।
भूले दुनिया रँग रूप रार,
हैं तुम्हे रहे इकटक निहार।
भयभीत भग चला अधकार,
'पिउ' रहा पपीहा-दल पुकार।
जल बीच खिले शतदल सुजान,
मुसुकान छोड़ते मृदु अजान।
तुम रग बिरगी झूम झूम,
वसुधा पद पंकज चम-चूम।
वन, पादप, पत्र, कुसुम ऊपर,
सखि! खेल रही हो अति सुन्दर।
मनहर नवीन पुर हाट-बाट,
पथ बीच, तरगिणि तीर, घाट।
मादक दृग द्वय से मृदु निहार,
बरसा खेतों में सुख-बहार—
हँसती हो शिखर-शीश पर तुम,
मरती हो अलि असीस पर तुम!

आलस्य भरे प्रिय बोल बोल,
शीतल समीर मृदु मंद डोल।
इठलाता भावुक बना भोर,
उस ओर नाचता कुहुक मोर।
लख विश्वनाथ कोमल कपाल,
भर मानस में लालसा लोल।
अपना सँभाल प्रिय! चतुर चोर,
तुम चूम रही हो मुख अधोर।
मारती प्रकृति हन प्रेम बाण,
प्रभु पद पर लोटे पड़े प्राण।
निशि दीप रख, सुख-स्वर्ग-हास,
कर चुका बंद रसमय विलास।
निज सुमुखि पूर्णिमा कर दुर्लभ,
जग उठा सलिल शय्या से नभ।
निद्रित नवयुवक उधर अजान,
मृदु वायु इधर धीरे सुजान।
वातायन पथ से बह समान,
करती वन-कुसुम-सुगंध दान।
बालिका गूँथती सुमन-हार,
बालक करते अटवी विहार।
है जिधर दौड़ती दिव्य दृष्टि,
सब ओर सुखी सौंदर्य-सृष्टि।

पैने दृग दिल में मार-मार,
इठला सखियों से बार-बार।
मातंगिनि छोड़े निज कुटीर,
भरती शैवलिनी तीर नीर।
तुम तरसाती हो भर खुमार,
तुम बरसाती हो सुधा धार।
पृथ्वी परिहास मधुर महान,
कंचन बाले! तुम हो सुजान।
हम कवि हैं, भूले दिव्य राग,
हो रहे मुग्ध लख तव सुहाग।
तुम खोल चुकी हो मुक्ति द्वार,
क्यों करे न दुनिया तुम्हे प्यार?

फूल

(१)

विकसित उपवन के शृंगार,
मुकुलित विश्व विनोद विहार।
मौन युगांतर का इतिहास,
क्यों लिखते भर मृदु उल्लास।

(२)

शरद वधू सौंदर्य समेट,
चंद्र किरण का हार लपेट।

श्यामल पल्लव से मुख ढाँक,
चुपके रहे किसे तुम झाँक ?

(३)

मुक्तलता का चुंबन दान,
पागल तुम्हे बनाता क्या न ?
नर्तन-लहरी में उन्मत्त,
बहे जा रहे कहाँ प्रमत्त ?

(४)

केलि कला उत्सव आनद,
मानस-मंदिर मे स्वच्छद।
नाच रहे नटवर-से मौन,
तुम्हे प्रसिद्ध बनाकर कौन ?

(५)

वसुधरा के श्वेत नक्षत्र,
धारण कर यश-गौरव-छत्र।
मुदित लता पत्रों को घेर,
क्यों तुम रहे सुगध बिखेर ?

(६)

उषा-सुदरी अचल छोर,
फैला नभ अरण्य को ओर।
तुम्हें बुलाती है उसपार,
कर वसत के साथ विहार।

(७)

लघु विनोद में निपुण निधान,
    ओस बॅूद बालिका अजान।
त्याग विमल वल्लरी-कुटीर,
    नहलाती है तुम्हे अधीर।

(८)

तव सौंदर्य-स्वरूप निहार,
    पिकी कूदकर बारबार।
मधुर मोद में उछल सुजान,
    मुग्ध खेलती है अनजान।

(९)

पवन हिंडोले पर झुक, झूल,
    मुसुका मधुर मनोहर फूल।
कोकिल कलरव मे चुपचाप,
    ठगे जा रहे क्यों तुम आप?

(१०)

किसी विपिन बाला के पास,
    बनकर कर्णफूल स हुलास।
जाग्रत जीवन यौवन खोल,
    चूम रहे क्यों गोल कपोल?

(११)

वध अलक आसन पर कौन,

मुसकाते मन-ही-मन मौन ।
खिलकर शैल शिखर पर मित्र ,
खींच रहे तुम किसका चित्र ?

(१२)

मालिन के दृग द्वय उत्फुल्ल ,
तुम्हे ढूँढते परम प्रफुल्ल ।
चकित प्रतीक्षा पथ पर शात ,
किसे बुलाते हो तुम कात !

(१३)

गध-कणों के गेद उछाल ,
सध्या को सुवर्ण मद ढाल ।
द्रुम-सहस्र शाखा पर मौन ,
झूम रहे तुम परिचित—कौन ?

(१४)

मधुसूदन ! तव चारों ओर ,
भृ ग प्रेमिकाएँ कर शोर ।
सोच विनोद विहार विलास ,
दौड़ दौड़ रचतीं नव रास ।

(१५)

मुरझाकर दो दिन के बाद ,
बरसाना वन में न विषाद ।

पाकर कवि यौवन उद्यान,
रहना खिले प्रसून सुजान ।

वसत-समागम

(१)

कुसुम-कमान तान मदन महीपति से,
फूल बरसाते लोनी लतिका कुटीर से,
स्वर, ताल, छद रसरास रग कानन मे,
हॅसी बिखराते मृदु मलय समीर से।
झूम झूम, चूम चूम केतकी-कली-कपोल,
तैरते, उछालते हिलोर नद नीर से,
नाच-नाच नटवर ! नटनी छटा के साथ,
चित्रकार उर में बसे हो चित्र चोर से।

(२)

झर झर झर झर झरना रहा है झर,
मुदिता तरंगिणी बिखेरती तरग लोल,
लूट-लूट मधु मित्र कोकिल कदब पर,
वन-उपवन मे रहा है मजु बोल बोल।
चहक चकोरिनी चकोर साथ दौडती है,
कीर झुड उडते कपोत करते कलोल,

मोहिनी वसुधरा हरी परी बनी नवीन,
यौवन विलासिनी खडी है स्वर्ग द्वार खोल।

(३)

मल्लिका-कतार कमनीय कचनार साथ,
मद मे उतावली बहकती है फूल फूल,
कमल कलेजे पर मार नैन-सैन बान,
मालती महकती है डाली पर झूल-झूल।
यूथिका विहँसती है पत्र अग मे लपेट,
पद्मिनी खिली सुधाशु उर शूल हूल-हूल,
चचल भ्रमर-भीर ज्ञान हाट हाट बेच,
पगली पड़ी प्रसून पर देह भूल भूल।

(४)

सोरही कुरगिनी कुरग साथ शाति ढूँढ,
केसरी दहाड़ता, उजाडता लता मतग,
मार किलकारी कपि कूदता करीर पर,
पारिजात-मडप मे जागता मयूर दग।
प्रकृति-वधटी-रूप ताक-ताक खजरीट,
केसरी-चमन पर छोड़ता नवीन रग,
उड़ता पराग रवि कचन किरण पर,
खोजता प्रदीप-ज्योति पागल बना पतग।

(५)

वृद्ध वट-तरु में उमड़ता नवीन जोश,

दाड़िम रँगीली कलिका को चुमकारता,
कदली तलाब तीर हिलती हवा के साथ,
छद्म रूप धर देश, वेष को सँवारता।
लेकर प्रसून-थाल पूज-पूज सध्या पद,
चद्र-चद्रिका सुहाग विश्व-हाथ हारता,
फागुन विभावरी मे खेल खेल होली खूब
भारत अनाथ हो सनाथ मौज मारता।

(६)

हँसते-हँसाते, इठलाते ऋषिराज आज,
तीर्थ भू तिलोत्तमा समान छवि छा रही,
साजती कुसुम-हार कठ मे व्रजागना है,
सुदरी सुरागना स्वपति को रिझा रही।
चुनती वरागना सुघर सेवती प्रसून,
बालिका शयन भूल शिशु को चिढा रही,
करती पुजारिनी प्रणाम भक्ति-भाव-युक्त,
वनिता सुहागिनी मराल को चुगा रही।

(७)

कबि की दुलारी आओ झीने पीत पट ओढ,
फूल-सेज ऊपर पडा सुकवि काव्य लीन,
हाथ मे सुराही मदिरा की भर लाओ और,
जयमाल-लाओ, फल लाओ काम के नवीन।
नाचो और गाओ तुम हूर सी हृदय हर,

घूँघट उलट शरमाओ रति-छवि छीन,
भेंट भेंट भर भर रोम रोम में विनोद,
कामिनी, बजाओ ऋतुराज साथ प्रेम बीन।

अभिलाषा

(१)

कविता-कमलिनी के कनक प्रदीप पर,
जलता रहूँ उलंग प्रेमिक पतंग सा,
उड़ता रहूँ पवित्र कल्पना-गगन पर,
मीठे-मीठे बोल बोल कोकिल विहंग-सा।
यमुना नदी के उसपार श्याम वन बीच,
भरता रहूँ चकित चौकड़ी कुरंग-सा,
खींचता रहूँ सुरंग चित्र मधु मानस में,
मोह वितरित कर मोहित अनंग-सा।

(२)

चक्र की तरह चक्रधर कर पर घूम,
डोलता रहूँ सदैव सुंदर पवन-सा,
चाँद-सा चमकता रहूँ सुधा समेटकर,
फैलता रहूँ सुवर्ण सूर्य की किरन-सा।
झंकृत सितार-सा रहूँ निशीथ पथ पर,
संचित रहूँ सरल-सा सुहाग धन-सा,

शिशु रामचद्र-सा सदैव हँसता रहूँ मैं,
फूलता रहूँ लवग-लतिका-सुमन-सा।

(३)

उमड़ घुमड़ घनश्याम मेघ की तरह,
प्रमिका के आँगन में बरसूँ वसत-सा,
विधुरा विदेशिनी के स्वप्न केलि-कानन मे,
कोमल कुसुम-हार गूँथूँ कवि कत-सा।
रेणु वन-मार्ग की विमल वेण बन नित्य,
बजता रहूँ भजन मे सुजान सत-सा,
झूमता रहूँ नियति नायिका-मुकुर-मध्य,
मुक्ति-गोद पर चढ अत-सा—अनत-सा।

प्रेम

हे विश्व धन यशस्वी, त्रैलोक्य-नाटिका में,
मूच्छित पडा मचल क्यों ?
तन्मय तरुण तपस्वी, ऐश्वर्य-वाटिका में,
उत्सुक खडा अचल क्यों ?
चचल वसतबाला, शृंगार फूल का कर,
मद ढाल पी रही है,
बिखरी प्रसून माला, व्रज-गोपिका बिना वर,
सुन वेणु जी रही है।

उस ओर खींचता है लघु पुष्प बाण सुंदर,
कदर्प मुग्ध मन में,
पीयष सींचता है, वैकुंठ से उतरकर,
पिक साँवला विजन मे ?
तू भृंग-सा सिकुडकर, नलिनी पराग पर क्यों ?
विक्षिप्त सा रहा है ?
पागल पतंग ! उड़कर, द्रुत दीप-ज्योति पर क्यों,
सर्वस्व खो रहा है ?
कल्लोल तुल्य निर्मल, रस प्राण मे विकल-सा,
लहरा रहा मधुर तू
नित नाच-नाच कोमल, नट सा सुखी सफल-सा,
कुछ गा रहा चतुर तू।
स्वर्गीय दूत बनकर, किस मान-मंत्र-बल से,
है इंद्र जाल रचता ?
घनश्याम-तुल्य तनकर, उल्लास छीन छल से,
नभ-गोद मे मचलता ?
विद्रोह-सा टहलता, तरुणी प्रफुल्ल यौवन,
व्याकुल विरह सताता,
पखा नवीन झलता, मोहन मलय-पवन बन।
सुंदर सुमन खिलाता।
क्यों ओस-सा पडा है, सुकुमार वन-लता पर ?
कर आरती उषा की,

चित-चोर-सा खड़ा है, धर मृदु कपोल पर कर,
छवि छीन राधिका की।
किस रास का करेगा, अभिषेक मुसकिराकर,
हे भाग्यवान भोगो!
झोली फटी भरेगा, तू शुद्ध मन फिराकर,
किस दीन की वियोगी?
सौंदर्य-सत्य पथ पर, मैं हूँ खड़ा उमगी,
अवतार चीन्ह तेरा,
चढ मुक्त कीर्ति रथ पर, आ दौड़ शीघ्र संगी,
सुन प्रेम-गीत मेरा।

कविता

भाग्यवान कवि की कविता हूँ,
अति सुंदर मतवाली हूँ।
सुरा-सरीखी मैं बहती हूँ,
कोमल कांत उजाली हूँ।
प्रेममयी के पीन स्तन पर,
मणि-सी झूम झलकती हूँ।
पनिहारिन के जल घट भीतर,
जल-सी उछल छलकती हूँ।

अर्द्ध निशा में सज धजकर मैं,
फूलों से इठलाती हूँ।
फिर मोहन-मयक-मुख में मैं,
मजु मधुर मुसकाती हूँ।
चिता-धूम में घूम घूम मैं,
बिहँस छुडाती फुलझड़ियाँ।
मेरे साथ मनोरजन कर,
मुग्धा कहलाती घड़ियाँ।
कालिदास की अमर कथा हूँ,
वसुधरा की छाया हूँ।
कोमल गध मल्लिका की हूँ,
नेति नेति की माया हूँ।
कामदेव-से रसिक बटोही,
पथ पर मुझे बुलाते हैं।
स्वाति-बूँद हूँ मुझे न पाकर,
चातक-दल मर जाते हैं।
शिशु की मीठी सरल हँसी हूँ,
नव यौवन की हूँ रानी।
मुझे रसमयी जान चूमते,
सन्यासी वर विज्ञानी।
बहा वीर-रस रणस्थली मे,
पीती शोणित कपालिका।

अट्टहास करती हूँ नगी,
    बाल बिखेरे करालिका ।
किंतु रुचित शृंगार बीच मैं,
    घूँघट काढ लजाती हूँ ।
करुणाकर को आती करुणा,
    यों रोती चिल्लाती हूँ ।
नव रस एक इशारे पर ही,
    अपनी कला दिखाते हैं ।
मायाविनी, कभी सपने में,
    नीरस मुझे न पाते हैं ।
कवि-मानस से निकल, मचल मैं,
    दुनिया में यश पाती हूँ ।
शर्मीली चितवन हूँ दृग की,
    हृदय-बीच धँस जाती हूँ ।
सभी ठौर हूँ, शब्द शब्द है,
    साधु, मधुर, उज्ज्वल द्रोही ।
प्राण-कमल पर मैं सोती हूँ,
    गूंज रहे अलि विद्रोही ।

यौवन

जीवन प्रभात-रवि-सा, जग बीच शुभ्र निर्मल,
किरण बिछा रहा है।
पागल किशोर-कवि सा, साहित्य मध्य मंजुल,
हलचल मचा रहा है।
विज्ञान-ज्ञान खोकर, शृंगार-रस-लहर मे,
उन्मत्त हो रहा तू।
हे चित्रकार सुंदर, किस माधुरी नगर मे,
विक्षिप्त सो रहा तू?
विषमय विरह व्यथा से, कुसुमित कदंब ऊपर,
बुलबुल कराहती है।
विकसित कमल कथा से, भोरी मचल-मचलकर,
सुख को सराहती है।
मधु-सा मधुर मनोहर, चिकने हरे विटप का,
रसमय रसाल तू है।
गंधर्व श्याम सुंदर, श्यामांगिनी मुकुट का,
माणिक विशाल तू है।
जन्मांध लोचनों में, बनकर प्रकाश निर्मल,
झलमल झलक रहा तू।
दुख-दैन्य मोचनो मे, पाषाण प्राण मे चल,
छल-छल छलक रहा तू।

मुसुकान यह मनोहर, मानो वसत ऋतु के,
झरते सुघर सुमन हैं।
अभिसार प्रेम पथ पर, लोचन हज़ार अँटके,
सौंदय में मगन हैं।
सजनी सुवर्ण वरणी, ठगिनी-समान व्याकुल,
पगली बनी खड़ी है।
आ बाँध तीर तरणी, नाविक सुजान चचल,
यह मौत की घड़ी है।
शृगार पद्मिनी का, सधवा सुहाग चदन,
तू शात साँवला है।
कुबजा कुरूपिनी का, वह स्पश, ध्यान, चु बन—
तू कृष्ण बावला है।
अलि-जौहरी रसीला, कोकिल समान गायक,
चक्राग-सा चपल है।
छैला, छली, छबीला, नटवर नवीन नायक,
मृदु मौलि है—मुकुल है।
शृगार साज सध्या, ले आरती कटोरी,
तुझ पर उतारती है।
तेरे लिये कभी क्या, उस पार बैठ गोरी,
यौवन सँवारती है।
चमके सदैव मग मे, गौरव-गगन सितारा,
हे कवि, गुणी, सुन्दर्शन।

नीरस असार जग मे, तू कर चुका हमारा,
पारस-समान जीवन ।

अहकार

(१)

मैं अधड़ हूँ, लता-कुंज के—
तोड फेक देता हूँ फूल,
वह समुद्र हूँ मै प्रलयकर,
है जिसका अदृश्य लघु कूल ।

(२)

धूलि-समान उडा देता हूँ,
ऐश्वर्यों के भोग अनत,
बात-बात मे जल उठता हू,
मैं हूँ ऐसा क्रोधी सत ।

(३)

ज्वार और भाटा हूँ, ज्वर हूँ,
तृण-सा विश्व समझता हू,
अपनी निरुद्देश यात्रा में,
कभी न रोता-थकता हूँ ।

(४)

चढ़ा हृदय के शैल-शिखर पर,
करता हूँ मैं तूय निनाद,
दौड़-दौड़ मैं कमज़ोरों के,
गले घोटता हूँ जल्लाद।

(५)

रवि की आँख फोड़ रहा हूँ,
घूम सघन घन-सा बलवान,
जोड़-जोड़ मै क्या धरता हूँ,
पाप, ताप, अपयश, अपमान।

(६)

विश्व पादुका-तल लोटूँगा,
मैं न कभी भिक्षुक बनके,
मैं भूखा हूँ, खा जाऊँगा,
पूर्व-तपस्या फल मन के।

जन्मभूमि

(१)

विश्व वाटिका मे करती हो मद विलासिनी ! मधुर विहार,
रूप तुम्हारा अति सुंदर है, मुग्ध कर रहा है शृंगार।

मधु पी पी विक्षिप्त-समान,
खेल रहे अलि-कुल अनजान।
कुसुम-मालिनी! तुम पगली-सी किसे रही हो बिहँस निहार;
रूप तुम्हारा अति सुंदर है, मुग्ध कर रहा है शृंगार।

(२)

भाँति-भाँति के द्रुम हँसते हैं लदे हुए फल-फूलों से,
शीतल हवा उड़ी आती है नदियों के लघु कूलों से।
प्रकृति सहेली सी छवि कौन?
नाच रही छम छम-छम मौन।
छोड़ कुसुम-रथ उतर पड़ा है पथिक प्रेम से—भूलों से,
शीतल हवा उड़ी आती है नदियों के लघु कूलों से।

(३)

जुही-कुंज में थिरक रहे हैं देख मेघ-दल मत्त मयूर,
विहग तुम्हारे गुण गाते हैं नीड़ों मे सुख से भरपूर।
जल-सिंचित खेतों के पार,
चरते हैं मृग झुंड उदार।
चकित किसान खड़ा है मग में, मन में नूतन बात बिसूर,
विहग तुम्हारे गुण गाते हैं नीड़ों मे सुख से भरपूर।

(४)

संध्या समय फूल चुनती हैं तव वन मे गज-गामिनियाँ;
शिव-मंदिर में शंख बजातीं नित्य कृशांगी कामिनियाँ।

सुंदर शिशु तारों के साथ,
रजनी गई, पसारे हाथ—
आलिंगन करती है सखि सी, सुख पाती हैं भामिनियाँ,
शिव-मंदिर में शंख बजातीं नित्य कृशांगी कामिनियाँ।

(५)

स्वर्ण बरसता है खेतों मे, है लक्ष्मी की कृपा अपार,
सरस्वती रस बरसाती है बजा-बजाकर मधुर सितार।
तृण-तृण में झलमल झलमल,
झलक रही नव छवि श्यामल।
दिगंबरी! तव मधु माया मे हम मोहित हैं पुत्र उदार,
सरस्वती रस बरसाती है बजा-बजाकर मधुर सितार।

(६)

छ ऋतुओं के साथ खिलौन खेल रहे हैं बारह मास,
पढते हैं कवित्त पद्माकर, देव, बीरबल, तुलसीदास।
राधावर के प्रिय पथ पर—
अंकित चरण चिह्न सुंदर।
भाव-समुद्र बहा करता है, भर उर पुर में मृदु उल्लास,
पढते हैं कवित्त पद्माकर, देव, बीरबल, तुलसीदास।

(७)

अन्नपूरणा तुम हो, तुमसे अमर बना है नव-यौवन,
भिखारिणी कहकर मा! कैसे करें तुम्हारा संबोधन?

जिधर अटकती है कवि दृष्टि,
है सुहासिनी जीवित सृष्टि।
बैठ स्वर्ण-सिंहासन पर तुम करती हो जग का शासन,
भिखारिणी कहकर मा! कैसे करे तुम्हारा सबोधन?

तेरी दया

कमल-नयन तेरी आँखों से,
देख रहा हूँ मै ससार,
तू दरिद्र का गुप्त रत्न है,
मै हूँ विमल विश्व शृ गार।
मेघों के पवित्र जल से तू,
सींच रहा सूखा उद्यान,
मैं वसत-सा मुसकाता हूँ,
इधर-उधर हो अतरधान।
मेरे मुख पर चद्र किरण-सी,
ज्योति रहा तू नित्य बिखेर,
रोगों को बटोर, तू सम्मुख,
लगा रहा भोगों के ढेर।
जल, थल, अनिल, अनल, अबर में,
तू हसता है नित्य नवीन,

तुझे लोग कहते हैं सागर,
मुझे लोग कहते हैं मीन।
कानों में तू फूँक रहा है,
रह रह मधुर वेणु-संगीत,
बाल सखा-सा खेल रहा हूँ,
करता हूँ दिन-मास व्यतीत।
परम पिता! तू सिखलाता है
मुझको ज्ञान और विज्ञान,
मन-ही-मन प्रसन्न होकर मैं,
गाता हूँ तेरे गुण गान।
भुजा उठा, तू शंख फूँक के,
इधर देख ले हे अनुकूल!
भर लाया हूँ हृदय पात्र में,
चुन-चुन अभिलाषा के फूल।
झुका पड़ा हूँ चरण-कमल पर,
नीरस भक्ति भावना साथ,
गरुड छोड पैदल आया तू,
रखने सिर पर अपना हाथ।

प्रतिकूल

सोऊँगी—यह सोच, सेज मे सोई मैं अलबेली,
उस निशीथ मे रही देखती स्वप्न अनेक अकेली।
तुम प्रदीप बाले उमग की मदिरा नदी बहाते,
क्या जानूँ, क्या रहे रात भर गुन-गुन-गुन-गुन गाते।
बैठी परम तपस्या मे मैं ध्यान तुम्हारा धरती,
देख तुम्हारी मीठी चितवन मुग्ध आप मै मरती।
घूँघट-पट को खोल देखती किस पथ से तुम आते,
सुनती हूँ, कालिंदी-तट तुम मोहन, वेणु बजाते।
मचली, सिसक रही कोने में अपना रूप छिपाए,
निधड़क इस सूने कुटीर में घुसे चले तुम आए।
अपना कर-स्पर्श फिर देकर मुझको छेड़ रिझाया,
रसिक, रूप के अलकार से तुमने मुझे सजाया।
सबका लय है, इस चिंता मे, क्या निकुंज में लेती,
तोड़-तोड़कर मैं फूलों को फक धूलि मे देती।
किंतु उन्हें चुनकर तुम करते प्रस्तुत हार निराला,
मुझे बिठा करके प्राणों में पहनाते वह माला।

उमग

(१)

यदि हम होते फूल सलोने सुदर वन के,
लतिकाओं को चूम, झूलते चद्र किरण पर,
भ्रमर-वधू के साथ ढाल मतवाली मदिरा,
प्रात काल सुरेश-चरण रज पर जाते झर।

(२)

यदि हम होते विरह किसी विरहिनि बाला के,
तो उमग का स्रोत बहाते मानस पट पर,
बन आँखों के तीर, अनेको चीर कलेजे,
जल-तरग की भाँति उछलते कचन घट पर।

(३)

यदि हम होते भ्रात पथिक सूनी सध्या के,
तो निश्चय तरु तले गीत गाते अति सुदर,
मेघदूत को छेड, छोड़ आश्रम का आसन,
विहग-वधू के साथ चले जाते घर उड़कर।

पथिक

कामदेव-सा घूम रहा हूँ,
पुष्प-वाटिका मे सानद,

नव यौवन उद्दाम वेग से,
उडा रहा हूँ कोमल छद।
श्याम मेघ सा मुझे देखकर,
चातक दल इठलाता है,
फूलो की बाँसुरी बजाकर,
भृ ग पराग उडाता है।
कलियों की मजलिस में बैठा—
हूँ मैं बादशाह बनकर,
चपा घू घट खोल खडी है,
कात कु ज मुख-दर्शन कर।
जुही पिलाती मुझे सोमरस,
लता फूल बरसाती है,
मौलसिरी के साथ मालती,
नाच-नाचकर गाता है।
प्रकृति सभा में हँसता हूँ मैं,
सोने के सिहासन पर,
मेरे चरणों पर गिरती है,
कुसुम मालिनी झर झरकर।
ले आया हू इद्र सभा के,
उत्सव की आनद घड़ी,
होता हूँ बेहोश, विश्व मे—
सब्ज़ परी सज मौन खड़ी।

त्रिभुवन का आनद निमन्त्रण ,
आज कर चुका हूँ स्वीकार ,
ज़ाफ़रान के खेतों में मैं ,
घूम रहा हूँ राजकुमार ।
शकु तला की मधुर कहानी ,
तपोभूमि से कहता हूँ ,
पचवटी में रामचद्र-सा ,
मैं सुख से सो रहता हूँ ।
पैदल ही हूँ चला जा रहा ,
छोटी-सी पग डडी पर ,
वट निकु ज झालर मे सुख से ,
झूल रहा हूँ हँस-हँसकर ।
पचम स्वर से वधू-कोकिला ,
मेरा कीर्तन करती है ,
मेरी रूप राशि पर रीझी,
उषा सु दरी मरती है ।
मैं सुधाशु झरने मे धोकर,
कोमल-कुमुद किशोर शरीर ,
करता हूँ विहार गगा-तट,
खो आलस्य भरी तन पीर ।
आयु-वधू के भव्य भाल पर,
मैं सिंदूर चढाता हूँ ,

नव मजरी लता-पत्रो के—
साथ भैरवो गातो हूँ।
कभीं हिमालय की चोटी मे,
फूल गूँथता हूँ चचल,
कभी अतिथि मै बन जाता हूँ,
किसी द्वार का महा सरल।
कभी कभी सुदरता-मद मे,
कवि-सा मुग्ध मचलता हूँ,
कृषक-बालिका से बात कर,
खेतों बीच टहलता हूँ।
सध्या को मै दे लेता हूँ,
द्गग म अधकार अजन,
आँख मिचौनी खेल, भोर मै—
करता हूँ सध्या-वदन।
जादूगर के खेल अनोखे,
दुनिया को दिखलाता हूँ,
हवा-योगिनी से हिल मिलकर,
उडा भ्रमर-सा जाता हूँ।
दुर्गम गिरि, कातार, मरुस्थल,
के सुदर माणिक्य बटोर,
इस पागल प्रदेश से अब मै,
जाता हूँ अनत की ओर।

पूजा के कुछ फूल चयन कर,
पच प्रदीप जलाऊँगा,
पद्मासन मे बैठ कहीं मै,
आज समाधि लगाऊँगा।

अकाल

अजगर-सा मुख फैलाकर,
यह कौन असुर आता है?
सध्या के सुदर वन से,
फूलों का शव जाता है।
जगती मे आग लगी है,
झुलसा जाता नर जीवन।
चडाल क्रातिकारी का,
होता प्रचड आदोलन?
पी पीकर रक्त हृदय का,
चितना नाचती गाती।
बालक का काढ कलेजा,
माँ दाँत पीसती खाती।
सूझता नहीं दुर्बल पथ,
तम अट्टहास करता है।

प्रिय पिता गोद म सुदर,
बच्चा सिर धुन मरता है।
अन्याय क्रुद्ध ले कर मे,
शिव का त्रिशूल प्रलयंकर।
करता फिरता है हत्या,
घूमता चक्र सा दर दर!
नरमेध-यज्ञ ज्वाला मे,
मैं भस्म हुआ जाता हूँ।
सुख शाति का न किचित् भी,
आभास कहा पाता हूँ।

आशे

पडे प्राण सकट में, ज्यों ही आहट तेरी पाई,
यह ससार-समुद्र बूद-सा देने लगा दिखाई।
हृदय-राज्य मे अति उमग से उठे अपरिमित गाने,
मुक्ति राज्य पाता हूँ अब यह सोच लगा हुलसाने।
निश्चित पथ को छोड और ही पथ मे आकर अटका,
किंचित् झलक दिखा तून क्या मुझको दे-दे पटका?
मेरी आहों की बनायगी क्या तू मोहिनि-माला?
अभी! धधकती है प्राणों मे नित तेरी ही ज्वाला।

भाव भरी मम भव्य भावना दान करेगी किसको ?
शून्य राह मे झाँक रहा हूँ आगे पीछे उसको !
उछल रहा है हृदय, तुझे क्या अपनी व्यथा सुनाऊँ ?
पख नहीं, फिर कैसे उड़कर मैं उससे मिल जाऊँ ?
है थोडी ही दूर कुटी वह—वह देती दिखलाई,
चलो चलो कह इस निजन मे मुझे कहाँ ले आई ?
सूख रही है साँस लता, तू आशा-जल से सींचे !—
किस अनत को ओर मुझे है लिए जा रही खींचे ?

सहचरी

प्रथम प्रथम कर परिचय मुझसे, सुखी हुई वह बाला,
शर्मीली चितवन से उसने मुझे हृदय दे डाला,
बिसर गई वह स्वय आपको, मेरे गुण-गण गाती,
उसकी छवि मेरे प्राणों मे सुधा धार बरसाती।
मैं वसत बन इधर सजाता हूँ फूलों की डाली,
देने को उपहार खोजता उधर भ्राति-मतवाली।
वह रमकर कोकिल-कूजन में कलियों से इठलाती
निद्रा मे भी नव स्वप्नों का इद्र जाल फैलाती।
तपा तवा-सा विरह ताप से अपना तन मैं पाता,
अहोभाग्य, उस मिलन राज्य मे मन-ही-मन हुलसाता;

मैं हूँ गान और वह उसकी मधुर तान है प्यारी,
कैसे उसे भूल जाऊँ जब ऋण है उसका भारी ?

प्रिया से

निकल भवन से, लिए हाथ म छूँछा जल घट,
किस तटिनी के तीर जा रही हो अलबेली ?
छोड़ मधुर मुसकान, माधुरी बरसाती तुम—
किस अजान का छोर गहोगी आज अकेली ?
सजनि ! तुम्हारे इन कु चित कोमल केशो को,
फर फर फर फर उडा रहा है मारुत-चचल,
सावधान ! तुम पथ पर तनिक ठिठुक जाओ तो—
उलझ न जाए कही कठिन काँटो मे अचल।
गोल कपोल चूमते हिल हिल कर्णफूल कानों के,
क्यों इतनी स्वतत्रता तुमने दे डाली है उनको ?
घूँघट पट का तनिक खीच लो, बचा रसिक भँवरो से,
मन म ही तुम रहो छिपाए अपने चचल मन को।
संध्या का है समय साँवला, अधकार है घिरता,
प्रकृति खेल में रमो न, खोकर नूतन सुध सुकुमारी;
विजन घाट से लौटी गृह को, कहा मान लो मेरा,
नही, राह भी, अधकार म छिप जायेगी प्यारी।

ज्योति

किस रहस्य से अरी रसीली !
लाई सरस रसों को लूट ?
नाच रही हैं गगनांगन मे—
आँखे पड़ी तुझी पर टूट !
लता पत्र मे लाट रही तू,
खेल रही बालिका-समान,
जल के निर्मल वक्षस्थल पर,
झलक रही तेरी मुसुकान।
नही पडे क्या कोई अब तक,
तुझ पर गुरुतर या लघु क्लेश,
सजनी ! जो प्रफुल्ल मुख तेरा,
सुदर और सरस है वेष ?
कौन भावना भर प्राणो में— ?
तू करती मीठी बौछार।
देवलोक से भी बढकर क्या,
है तुमको प्यारा ससार।

पाषाणी

मेरी हृदय झोपडी को देकर मदिर का रूप,
छिपा लिया है अतस्तल मे उसने रूप-अनूप।

कौन नशा करता प्राणों में बिजली-सा सचार ?
मधुर रूप में रमा देखता मैं अपना ससार ।
एक मस्त झोंके मे उसने लिया चपल चित छीन ,
विकल छटपटाता हूँ होकर गम रेत का मीन ।
वह माधुरी और वह उसकी मधुर मधुर मुसुकान;
किस कोने मे पड़ी सो रही होकर अतर्ध्यान ?
उसकी छाया वशीकरण थी मै न सका पहिचान ,
उस जादू मे भूल, मुग्ध हो हुआ आप अनजान ।
सब कुछ मैंने किया समर्पण सुख, दुख, माया-मोह ,
हुआ और हू , किस निर्जन मे लूँ मै उसकी टोह ?
जपूँ नाम की माला कैसे, सोच से न अवकाश !
अधकार दुनिया मे होगा कब वह रूप प्रकाश ?
मैं हूँ वह, पर वह न कभी मैं, अपना हटा चरित्र ,
पाषाणी कब उदय रूप का ले आवेगी चित्र ?

देवि ! कौन वह ?

(१)

बैठी हुई हृदय मे जब क्या जानें क्या वह गाती ,
चपल उँगलियों की गति से वह वीणा मजु बजाती ।
जिसकी यौवन भरी जोवनी मेरे आगे आती ,
देवि ! कौन वह इगित पर जो जोव— चक्र चलाती ?

(२)

भरी सभा के बीच बैठकर जब मैं सिकुड़ लजाता,
करके दुख से मस्तक नीचा, हूॅ गरीब बन जाता।
विद्या की अधरो पर आती है जब पूर्ण पिपासा,
देवि ! कौन वह बन जाती जो भावुक जन की भाषा ?

(३)

बार-बार असफल होने पर जब हताश हो जाता,
जब भविष्य को घिरा हुआ मैं अधकार से पाता।
मारा गया रग मेरा जब फेका ही था पासा,
देवि ! कौन वह खड़ी पास तब कहती मैं हूॅ आशा ?

(४)

विजन देश मे जाकर जब मैं पाता हूँ नीरवता,
उसी एक का ध्यान लगाए उसका रूप निरखता।
किंतु मुझे बहकाती है जब उसकी निष्ठुर माया,
देवि ! कौन वह राह बताते जिसको मैंने पाया ?

(५)

विषमय देख विश्व को जब मैं कलप कलपकर रोता,
अपने सभी साधनों को मैं पागल बनकर खोता।
माता-सी तब मुझे उठाकर स्नेह-गोद में लेती,
देवि ! कौन वह, जो है मुझको विविध सात्वना देती ?

उषा

(१)

विश्व विमोहन कर शृंगार,
झलका झलमल झलमल हार,
मेघ लोक-वासिनि बाला !
ले मृदु फूलों की माला,
नभ-सम्राट् स्वयवर मे तुम घूम रही हो किसे निहार ?
विश्व विमोहन कर शृंगार।

(२)

कुसुम सुगंधित मधुवन मे,
तुम प्रसन्न मन ही मन मे,
जपकर कोइ जीवित जाप,
देकर अर्घ्य दान चुपचाप,
तपस्विनी सी तन्मय हो किस प्राणनाथ के पूजन में ?
कुसुम-सुगंधित मधुवन में।

(३)

नलिन-नयन से विश्व विलोक,
चुपके से अशांति रथ रोक,
लुक छिपकर हे मतवाली !
फूलों से भरकर डाली,
चुनती हो सफ़ेद हिम-मोती, क्यों जागृत कर निद्रित लोक ?
नलिन नयन से विश्व विलोक।

(४)

गाकर दिव्य भैरवी एक,
विहगों को सिखलाकर टेक,
छवि की श्यामल छाया मे,
भुवन-मोहिनी माया में,
नित्य रसिक रवि का करती हो क्यों तुम अलबेली ! अभिषेक ?
गाकर दिव्य-भैरवी एक ।

(५)

नभ के उज्ज्वल आसन पर,
गौरव के अनुशासन पर,
खोल भक्ति का मोह-सदन,
चमकाकर सिंदूर वदन ।
हँसती हो क्यों चित्रकार के चारु चित्र सिंहासन पर ?
नभ के उज्ज्वल आसन पर ।

मालती

सखी, कौन तुम, चारुहास से बनी हुई अनजान—
खिली, कर रही हो कानन में सुंदर सुरभि प्रदान ?
गगनागन में उषा विहँसती—लिए अनोखा मेल—
इंगित से वह तुम्हें बुलाती—आओ खेले खेल ।

इठलाता लावण्य प्राण में भर अनुराग अनंत,
इधर मुग्ध मरता है तुम पर यह नवयुवक वसंत।
घृणा-कीट को निज लघु अतर मे दे करके स्थान—
फूली नही समाती हो तुम छोड़ मद मुसुकान।
परिचय पाकर मृदु समीर से गुन-गुन-गुन गु जार—
उड़े रसज्ञ भ्रमर दल आते कानन को झंकार।
परी-सरीखी, नाच-नाचकर, ले लेकर सम्मान,
मुक्त हृदय से तुम करती हो मधुपों को मधु-दान।
किंतु जानती हो न कहो क्या लीला का अवसान?
विषमय विश्व में न जाता है सबका समय समान।
हत्यारा माली आ प्यारी हरी लता को मोड—
निज कठार कर से हा! लेगा तुम्हे घड़ी में तोड़।
अधी दुनिया मौन रहेगी देख कठिन अन्याय,
सार्थक जीवन बिक जावेगा कुछ काड़ी मे हाय!
कौन जानता, कुचल चरण से छोडोगी दुख-तान,
या चदन-चर्चित सुर सिर पर पाओगी सुस्थान?

मालिन

दूब का सब्ज बिछौना छोड़,
उषा किरणों में हँस-हँसकर,

पवन से इठलाती चुपचाप,
प्रभाती गाती है सुदर।
कमल वन बीच सरोवर तीर,
चला लोचन शर झुक झुककर,
तोडती है विकसित मृदु फूल,
सुगधित पथ पर रुक रुककर।
मचलती मतवाली चल फिर,
विजन-वन में घूँघट पट खोल,
रूप की लहरी में उन्मत्त
बहा देती है वह भू-गोल।
नाचती नवयौवन अवलोक,
भ्रमर उड उड़ करते गुण-गान,
अकेली, डाली के लघु फूल,
लुटा देती है वह अनजान।
विदेशी जगल के उस पार
नदी-तट बैठी भूल अतीत,
पुजारी! उसे न छेडो आज,
हटो, सुनने दो कवि का गीत।

मेघ !

(१)

कौन तुम सुकुमार श्यामल कतार बाँध,
भूमते गगन पथ पर धूम्र वार से,
सुदर सलिल बिदु बनकर जाते छूट,
तृषिता-बसु धरा की व्याकुल पुकार से।
ललित लता बदन धोकर हजार बार,
कवि का मलार राग-सुन अति प्यार से,
कोमल-कुसुम-हार से बिखर जाते तुम,
हे जलद-जाल ! कैसे मारुत प्रहार से ?

(२)

एक ओर मेघदूत बन रति आँगन में,
मौज से बरसते मदन रूप धरकर
एक ओर विधवा विलोचन मे छिप छिप,
गर्म-गर्म आँसुओं से करते हृदय तर।
एक ओर स्वर्ग तज गिरि प्राण से बहक,
तुम बह जाते आप बन सिंधु की लहर,
एक ओर विद्युत् की मंद मुसुकान छोड़,
झरते अझोर तुम झर झर-झर झर।

(३)

तरल-तरगिणी तरग अग पर लेट
छल-छल जल वेग लीन है लगन में,

कूदते कुर ा ड़ते विहग खेत चुन,
नाचते दिगबर मयूर मधुवन में।
छाई है बहार रसमय नव यौवन में,
मदिरा भरी है माधुरी की चितवन मे,
बरसो सघन घन ! बरसो सुजान श्याम !
भाव भर दो नवीन भोग मे भजन में।

वर्षा-वधू

थिरकती हूँ गगनागन बीच,
मेघ की गोदी मे सानद—
लेट, भर आँखों मे आलस्य,
लूटती हूँ जग का आनद।
खडी मथुरा-वृदावन तीर,
राधिका सी करके शृगार।
हर्ष मे आज रहा है कूद,
साँवला कृष्ण किसान उदार।
सुगंधित फूलों के दल तोड,
नदी में फेंक रही हूँ आज,
विहसकर, शीतल छाया ओढ,
प्रकृति को पहनाती हूँ ताज।

भूमि पर बिछा हरी मृदु सेज,
    ओस-सी सो रहती हूँ मौन।
जागकर अर्द्ध रात्रि मे आय,
    न जानूँ बन जाती हूँ कौन ?
सुखी अपनी दुनिया अवलोक,
    बरसती हूँ रिम झिम स्वर-साथ।
लुटाती हू कुबेर धन कोष
    रिक्त कर अपने कोमल हाथ।
चमकती हूँ बिजली-सी मद,
    दूर उस जगल के उस पार।
मेंहदी रची पैर में, आह !
    खटखटाऊँ मैं किसका द्वार ?
आज सावन ऋतु मे सानद,
    सुनो हे कवि ! हे चतुर सुजान !
तुम्हारे हृदयासन पर बैठ,
    पुलक, बरसाऊँगी मुसकान।
नर्तकी-सी नाचूँगी मौन,
    खींचकर त्रिभुवन के रस रग।
रसिक-सा रीझ उठेगा शीघ्र,
    तरुण उच्छृखल विश्व अनंग।

सौंदर्य

(१)

तिमिर-गर्विता निशा मलीन,
लुप्त मधुर छवि ग्रह तल्लीन,
स्नेह-स्वप्न, निद्रा, भय दूर,
मिटा शांति मस्तक सिंदूर;
करते नव सुख अनुसंधान—
भरे कपोलों मे मुसुकान;
छोड़ निरंजन ग्राम्य-कुटीर,
बालक दल सरिता के तीर;
चौंक, चमक, कुछ सोच अतीत—
सुनते विहँग-दलो के गीत।

(२)

हँसा-हँसा रति व्योम ज़मीन,
रवि किरण हो क्रीड़ा-लीन;
ले निज भक्तों से जल-दान,
बढा-बढा दर-दर सम्मान;
कर सुरभित किशोर उद्यान,
दिखा तरुण मोहन विज्ञान;
भर प्रिय प्राणों में उत्साह,
फूट रहीं कृषि-मुख पर, वाह!

(३)

बहा मनोहर मधुर समीर,
फैला-फैला फेनिल नीर;
भर उर पुर मे जीवित जोश,
गरज गरजकर दारुण रोष;
गूँथ-गूँथ मृदु लहर-तरग,
बना हार भर एक उमग,
कर किलोल, हो कुछ कुछ क्लात,
नाच रहा सागर उद्भ्रात।

(४)

मिटा कठिन घायल दिल-साज,
सरोवरों म खिले सरोज;
प्यासे भँवरों की गुजार,
बहा रही सगीत अपार,
छेद-छेद दृढ पवत-गात,
झर-झर झरते क्षुद्र प्रपात,
पा विभूति का ओर न छोर,
नाच रहे जगल में मोर।

(५)

लड़ा-लड़ा दृग लज्जा पूर्ण,
भर मानस म सुख सपर्ण,

तोड़ ताड कलियाँ रंगीन,
भर आँचल में, ताक ज़मीन,
भूल भविष्य काल कल्याण,
तरसा मृदु व्यग्या के बाण,
सुना सुना अपना आमाद,
सखियाँ करती मनाविनोद।

(६)

कर मृदु मधुर अधर रस पान,
भेट भेट, बनकर अनजान,
सग सगिनो लिए अशाति,
भर दृग म मतवाली भ्राति,
इकटक प्रियतम रूप निहार,
कर दृग नीचे वारवार,
विलासिनी बाला स-हुलास,
करती शुचि एकात विलास।

(७)

भूल रूप, गृह-कार्य बिसार,
लिए गाद म शिशु सुकुमार,
बार-बार कर आलिगन,
कर पवित्र शशि-मुख चु बन,
हो-हो करके स्नेहाधीन,
उर से लगा, बनी सुखलीन,

(३)

बहा मनोहर मधुर समीर,
फैला-फैला फेनिल नीर;
भर उर पुर मे जीवित जोश,
गरज गरजकर दारुण रोष;
गूँथ-गूँथ मृदु लहर-तरग,
बना हार भर एक उमग,
कर किलोल, हो कुछ कुछ क्लात,
नाच रहा सागर उद्‌भ्रात।

(४)

मिटा कठिन घायल दिल साज,
सरोवरों म खिले सरोज;
प्यासे भँवरो की गु जार,
बहा रही सगीत अपार,
छेद-छेद दृढ पवत-गात,
झर-झर झरते क्षुद्र प्रपात,
पा विभूति का ओर न छोर,
नाच रहे जगल में मोर।

(५)

लड़ा-लड़ा दृग लज्जा पूर्ण,
भर मानस म सुख सपूर्ण,

तोड़ ताड कलियाँ रंगीन,
भर आँचल में, ताक जमीन,
भूल भविष्य काल कल्याण,
बरसा मृदु व्यंग्यों के बाण,
सुना सुना अपने आमाद,
सखियाँ करती मनाविनोद।

(६)

कर मृदु मधुर अधर रस पान,
भेट भेट, जनकर अनजान,
सग सगिनी लिए अशाति,
भर दृग म मतवाला भ्राति,
इकटक प्रियतम रूप निहार,
कर दृग नीचे बारबार,
विलासिनी बाला स हुलास,
करती शुचि एकात विलास।

(७)

भूल रूप, गृह-कार्य बिसार,
लिए गाद म शिशु सुकुमार,
बार-बार कर आलिगन,
कर पवित्र शशि-मुख चु बन,
हो-हो करके स्नेहाधीन,
उर से लगा, बनी सुखलीन,

विधवा मा की तृप्ति अनत,
पाती सुख सुहाग अत्यत ।

(८)

सुदर, मोहन, चिकने, गोल,
विनोदिनी के कुसुम-कपोल,
धुलते अश्रु-सलिल से आज,
मार रही मारी को लाज,
मूर्च्छित सा हो रहा शरीर,
देता स्फूर्ति न उसे समीर,
ताक रही वह प्रियतम राह,
भरता उधर वियोगी 'आह' ।

(९)

मैं कवि हूँ नवयुवक सुजान,
है मेरी कल्पना महान,
मैं विरक्त, मैं हूँ ऐश्वर्य,
मैं भीषण, मैं हूँ सौंदर्य,
मुझे न भाते अपने खेल,
दूर किए दुनिया के मेल,
मुझे सुहाती है इस काल,
प्यारी संध्या, प्रातः काल ।

(१०)

मैं बुलबुल, जग चमनिस्तान,

मिसरी मिली मोहिनी-तान,
हे सौंदर्य, तुम्हारी मूर्ति,
देती नहीं किसे है स्फूर्ति?
हे काशी के सायंकाल!
वृंदावन के प्रातःकाल!
तुम बहते जिस ओर अटूट—
जाता धैर्य उधर हो छूट।

(११)

तुम मेरे मन के आघात,
तुम तरुवर के नूतन पात,
ऐ जन्नत के चपल चिराग!
हूर मेनका के अनुराग!
तिलोत्तमा के प्राणाधार!
रंगा के सुंदर शृंगार!
तुम हो कांता के घूंघट,
गोकुल के उन्नत पनघट।

(१२)

तुम यमुना की तरल तरंग,
वैरिन वंशी की सु उमंग,
नटनागर के नृत्य, कलोल,
मेरी सजनी के मृदु बोल!
हरिश्चंद्र के सबस दान,

तुम हो मानमयी के मान!
कर फैलाती सखि जिस ओर,
देते बढा उधर तुम छोर!

(१३)

दर्प हगा के ह अभिमान!
व्याकुल प्राणा के सम्मान!
ह बादल के मुक्ता हार!
बिजली के पवित्र अभिसार!
जिधर दृष्टि पड़ती हर बार,
सुख त्यो तुम हो एकाकार,
देख तुम्हारा तनिक अभाव,
भूपति भर भिखारी भाव!

बिजली

प्रलयकरी पापमयी घृणा-सी
अति कर्कशा आहुति यन्त्रणा-सी,
तलवार या तोप भयकरी है
किस नक की तू पतिता परी है?
विकराल-सा तूर्य निनाद तेरा
थर-थर कपाता मृदु गात मेरा,

सुकुमार यौवन झक झोरती क्यो ?
तम का कलेजा दृढ चीरत क्यों ?
ऋतु जीवनो म जल जी रही है
चडालिनो शोणित पी रही है,
तू योगिनी काल करालिनी है
शैतान का अद्भुत रागिनी है।
आँधी ज़हर खाकर डालती है
क्यों तू मरण-जय रथ खोलती है ?
हँसती कुटिल हास्यमयी कुपात्री
मूच्छित पडा है पथ भ्रष्ट यात्री।
तू सिधु-वक्ष स्थल नाँघ क्षण मे
है बम चलाती मद-मत्त रण मे,
क्यों नाचती प्राण पियासिनी-सी
है पीटती ढोल पिशाचिनी सी।
चुन ले चली तू नभ के सितारे
क्षण में गई लील अरुण इशारे,
उन्मादिनी वारिद से लिपटती
क्यों सिंहिनी क्रोध-भरी झपटती ?
तेरी तडप कौन सराहते है ?
घायल पडे फूल कराहते हैं,
भय खा गई लाजवती थकी है
कुम्हला गई कोमल केतकी है।

मर-सी गई चातक की दुलारी
अब दादुरी गोल रही न प्यारी,
वधिरा बनी कुजनटो मयूरी
है रागिनी कोकिल की अधूरी।
री शंकरी! तान त्रिशूल अपना
किसको करेगी कह, भग सपना?
क्या ध्वंस का सत्य प्रमाण देगी?
किस प्राण में भोक कृपाण देगी?
अभिसार हा-हा कर रो रहा है
यमराज तंद्रा निज खो रहा है,
डमरू कुटिल क्रूर बजा रही है
भूतेश का रक्त सुखा रही है।
रोमांच लख लोलुप के बदन में
सो डाकिनी प्रेतपुरी सदन में,
मजलिस मदन की न उजाड़ कर दे
संसार के हाड़ न फाड़ धर दे!
छिप जा प्रलय-ज्योति ज्वलंत गोरी
छूँछी यहाँ दौड़ न ओ छिछोरी!
कवि प्राण में फूँक न रौद्र शंखा
हत्यारिनी! खोज सुवर्ग-लंका।

मै हूँ यौवन रस बोरी

(१)

यौवन किलोल अति चचल,
उड़ आओ हे मधुकर-दल।
पी लो मदिरा की प्याली,
मैं हूँ कमलिन मतवाली।
लेटी हूँ जब शय्या पर,
मैं गर्व भरी आत सुदर।

(२)

सध्या किरणों की डोरी,
मै हूँ यौवन रस-बोरी।
आनदमयी अलबेली,
पगली सी यहाँ अकेली।
गिनती हूँ घड़ी मिलन की,
केवल प्यासी चुबन की।

(३)

आँखों का गुप चुप रोना,
मृदु तन का कोना-कोना—
जलता है विरहानल से,
तुम सींचो करुणा जल से।
हे चित्त-चोर नट-नागर!
आनद-स्नेह के सागर!

(४)

हो जाय मधुर आलिंगन,
शत शत आकर्षण, चुंबन।
हट जाय विश्व की माया,
छूकर तव छविमय छाया।
क्षण भर की हो सुख क्रीड़ा,
झंकृत हो मानस वीणा।

कवि

(१)

कौन तुम झूमते हो मोह मदिरा मे मत्त,
रसिक विहारी अलबेले भोलपन मे ?
बाँसुरी बजाते किस कोमल कदंब तल,
नाच नट-नागर से मुग्ध मौन मन मे ?
सींचते सुधा की धार से हो कौन मरु प्राण,
सिमट सिमट मतवाले श्याम घन मे ?
यौवन-समुद्र-से उमडते हो किस ओर,
फूल-से महँकते हो कैसे मधुवन में ?

(२)

छिगुनी पै तान त्रिभुवन घूमते किधर,
हे दरिद्र ! लात मार के कुबेर धन पर ?

फाड फाड कफ्फ़न चढाते किसको हो बलि
भूतनाथ से महा भयकर बदन पर ?
क्रोध की चिता मे फूॅक ताप कौन शत्र ेश,
शेर से दहाडते हो कटकित वन पर ?
धूलि को तरह लोट सज्जन चरण-तल,
कौन हो मगन तुम प्रान की लगन पर ?

(३)

कल्पना परी के साथ कमनीय केलि करि,
कौन सी अलापते हा रागिना मनोहरी ?
लौटते न नीड को हैं काकिल कलाम आज,
मुग्ध मरती है छवि-नायिका दिगबरी ?
जीवन-लहर बीच खग जल खाती जाती,
धीर अति धीरे अति धी आयु की तरी !
जगदीश ! तुम हो बिछाते किस कौतुक से
चद्रिका किरण-सी अमर कीर्ति सुदरी ?

परदेशी

औवर बनकर पैठा हूॅ
नव से इस वन म भाइ !
भूलो है तन मन का सुग,
शायद मैं हूॅ सोदाई ।

सुदर प्रसून चुनता हूँ,
ऊषा की मधु-बेला में,
आनद चले आते हैं
बन ठनकर सुख मेला मे।
उन्मत्त कमल-सा खिल खिल
लहरों को चूमा करता,
सौंदर्य चित्र चित्रित कर
मै भावुक झूमा करता।
आनद-अश्रु झरते हैं
मेरी आँखों से झर झर,
मैं हूँ वसत का कोकिल,
कूका करता अति सुदर।
मानस तरग ध्वनि उठकर,
गूजा करती त्रिभुवन मे,
मदिरा छलकी पड़ती है
मेरी विमुग्ध चितवन मे।
बनकर चकोर चुगता हूँ,
चिनगारी प्रेम चिता की,
आशा मनुष्य की क्या है ?—
आशा है परम पिता की।
अपनी वशी लेकर मैं,
गाता हूँ यमुना तीरे,

बाधा की भीषण मजिल,
तय करता धीरे धार।
मेनका परी-सी सजकर,
रजनी मुझको वरती है,
सोता हू स्वप्न-जगत मे,
चद्रिका प्यार करती है।
हूँ रत्न ढूँढता रहता,
मैं पैठ सत्य-सागर में,
मेरी दुनिया उडती है
उड़ते विहग के पर में।
देखा करता हूँ चुपके,
जम का आश्चय तमाशा,
रहती है प्राणों मे नित,
नूतन विज्ञान पिपासा।
मेरी सूनी कुटिया म
यदि तुम हँसते आओगे,
सचमुच हैं दर्शन दुलभ,
सब आर मुझे पाओगे।

निर्वासिता

मर रही जीती हुई तरुणी सुहागिन मौन है,
आँसुओं से धो रही तन यह अभागिन कौन है?

है भरी व्याकुल दृगों मे जो व्यथा इसके अभी,
क्या बता सकती उसे त्रैलोक्य की भाषा कभी?
काँपते कोमल अधर, छाई मलिन छाया बड़ी,
प्राण मानों है नही, पाषाण प्रतिमा-सी खड़ी!
व्यर्थ ही ऋतुराज देता फूल फल का दान है,
किन्नरी का खो गया ऐश्वर्य-सुख-सम्मान है।
मालिका उरझी पडी नव कच-केश कलाप मे,
भर रही सिसकारियाँ है किस कठिन उत्ताप में?
भीगती बरसात मे आश्रय न पाती है कहीं,
वज्र क्यों गिरता न इस पर, मदिनी फटती नही?
कल्पनाएँ कब दिखाती मोह के नाटक यहाँ?
खींचती मानस पटल पर चित्र आशा के कहाँ?
पड रहे छाले हृदय म किस कलको दाग से?
कामना के तरु झुलसकर रह गए किस आग से?
द्रुत प्रभजन चाल से यह क्यों सिहर आती कली?
भ्राति मे भर घूमती हो! शून्य गोकुल की गली!
गिन रही भू रेत-कण, चारा तरफ भू-गोल है!
खो गया कगालिनी का रत्न क्या अनमोल है?
देखता है भोर म ध्रुव ग्रह, निशा की ज्यों प्रभा,
देखते हम है अभागे आज त्यो इसकी विभा।
यह लता लज्जावती है, या कली अनजान है?
यह अहल्या-मूर्ति है-अभिशाप मे चिरम्लान है?

खड़ न रहता वामपद से चुभ गया काँटा नया!
देख इसकी यह दशा आती दया को भी दया!
बोल मीठे रह गए इसके न कोई काम के,
मारते ढेले विहँसते बाल दल वन ग्राम के।
पथ अनंत, अनाथिनी यह जायगी किस ओर, हा!
क्या न कोई भी सुनेगा षोडशी का शोर, हा!!
कह रही दुनिया इसे चंडालिनी आनंद से,
हाय! कैसे मुक्त होगी यह कठिन दुख फंद से?

कोयल

अरी श्यामा, सुंदरी सुजान!
शून्य कर उदयाचल उद्यान।
बसता उपवन तीर अधीर,
चली आ उड़कर बनी समीर।
अकेली आँख मिचौनी खेल,
नील नभ पर मत संकट झेल।
बालिका-सी बन बीथी बीच,
अरी पगली! मरु-मानस सींच।
बोल के बरसाकर मृदु फूल,
कूक, कुसुमित कदंब पर भूल!

विरह की लपटों पर चुपचाप,
भस्म कर यौवन के संताप।
अरी सरला, सुंदरी कठोर,
देख, इस नन्हे वन की ओर।
प्रकृति सन्यासिनी मूँदे कान,
निमंत्रण के गाती है गान।
फलित द्रुम पर रचकर लघु नीड
भीड से बच प्रेमिका प्रवीण।
लताओं की मृदु खिडकी खोल,
सुना तू मधुर काकली रोल।
अरी संगीत-नायिका मौन,
मचल तू पूछ भ्रमर से, कौन?
पिया करता है मधु रस आप,
कटीली कलियों पर चुपचाप।
उड़ी फिर तू न दूर—अति दूर,
लजीली! कोई कथा बिसूर।
विकल है तेरे बिना दिगंत,
सिसकता है नवयुवक वसंत।

हिंदी

(१)

हे मधुर-हासिनी ! मधुर हास्य-रस धार,
भर तू विनोद मे प्रमोद म अधर मे,
फूल सी बिहँसे, फूल फूल फुलवारी सम,
पुतली-समान नाच मोहिनी नज़र मे।
छेड़ मंजु रागिनी सितार के समेट तार,
अमृत कहानी कह जीवन सफर में,
सुंदर कनक पात्र मद पूर्ण भटकर,
सरला समान खेल कविता हुनर मे।

(२)

इत्र दे छिड़क कांत क विलास-हास पर,
घूम तू विलायती हृदय म उमंगिनी !
शंख फूंक कोमल किशोर छात्र दल पर,
देश म, विदेश म, मचल री तपस्विनी !
लक्ष लक्ष दीप साज भारत भवन पर,
चंद्रिका-किरण सी बिखर देवनंदिनी !
भूल सुर-सुंदरी सुयश डोल पर नित्य,
मंगल महान कर मेरी चिरसंगिनी !

(३)

नूपुर बजा मधुर, खिडकी से झाँक झाँक,
चाँदनी बिछा रुचिर आँगन म सजनी !

गा मलार युवती कमल प्राण मे विहस,
बन जा तरुण कवि की करुण लेखनी।
आ मिलन पथ पर श्याम-कुंतला नवीन
रास रच रमणीय राधिका बनी ठनी,
धन्य कर ध्यय, मृदु पद रज दान कर
जाति म नवीन जोश भर विश्ववंदिनी!

(४)

विरह शयन पर सोऊँ जब मै सुजान,
सेविका-समान स्वप्न मे विकल कर तू,
काव्य म उमड़ सिंधु-लहरी समान नित्य,
मंदिर समीर सम बह री! अमर तू।
चमक चमक चंचला चपल पल पल,
बदरी समान फैल घर से निकर तू,
बूँद सी बरस छवि सी छिटक छाड़ छल,
पारिजात-मंजरी समान नित्य झर तू।

(५)

भारत वसुंधरा स्व आँचल पसार, हेर!
वरदान माँगती खडी उजाड बन मे,
आ हृदय आसन म सी रह थकी समान,
बहती वसंत की बयार तन-मन म।
उडते अनेक मतवाले मधुकर दल,
मधु दान कर, भूल यों न बचपन म,

हे कमल सु दरी ! कमाल कर मत्र पढ,
चिर कुसुमित रह कवि के चमन मे।

तरंगिणी

छेद वज्र गिरि-गात अश्रु सी,
मैं झरती हू झर झर झर,
करती हूँ अनत पथ-यात्रा,
फैला फेनिल लोल-लहर।
शिष्य बनाती नद्-नालों को,
कलकिनी सी कल-कल कर,
खड खड कर शिला खड मैं,
हँसती वसु धरा उर पर।
कुसुम सुरभि उड़ उड़ आती है,
मथ-मथ मृदु नदन-कानन,
कुढ-कुढ गूँज रहा मधुकर दल,
मस्त हो रहा नव यौवन।
सुरा पी रही मृदुल मल्लिका,
झूम रही नालनी महफिल,
फूल रही केतकी कमल-सी,
झरती जुही कली खिल खिल।

सूय मुखी मेरे चरणों पर,
चढी जा रही है चचल,
फूल-छडी-सी नाच रही हूँ,
मै नटिनी-सी मचल मचल।
चद्र किरण के वस्त्र ओढकर,
झलक झलक झलमल झलमल,
छिछले, कँकरीले पथ पर मैं,
बल खाती हूँ उछल उछल।
ताथेई-ताथेई सुख से,
नाच रही हूँ मरघट पर,
मैं अज्ञात-यौवना बनकर,
मौन पडा हूँ पनघट पर।
सोती सुमखी सखी-श्यामता,
रेत लपेट नग्न तट पर,
करती हूँ अभिसार अकेली,
अलबेली कचन घट भर।
चमक रहा नव कोहिनूर सा,
आसपास जुगुनू-मडल,
तैर-तैर कुछ खेल रहा है,
हस-कुमार अबोध सरल।
जल पीती है हिरन किशोरी,
कुहू-कुहू करती कोयल,

तरु-छाया सोती छाती पर,
मैं गाती रसमयी गज़ल।
फूल फल मृदु फेन-कुडली,
करती शुचि परिहास तुमुल,
ढाँक तमिस्रा अचल में मुख,
विभावरी हँसती मजुल।
हवा झुलाती स्वर झूले मे,
मैं उजाड़ती पथ, जगल—
बही जा रही मार्ग दिखाता—
दीप सुनहला उच्छृखल।
बज उठती उस पार बाँसुरी,
मै करती छम-छम नर्तन,
ध्यान तोडती मुनि-मडल का,
अट्टहासमय कर गर्जन।
छोड भोग-मठ ताक रही हूँ,
सुदर वाराणसी-नगर,
फुफकारते भुजग अग पर,
बजा रहे डमरू शकर।
परी सरीखी सजी हुइ मैं,
पाप-नाशिनी अति निर्मल,
मदमाती हूँ, अतल-गभ मे,
मुद्रित पड श्याम बादल।

उठा उठा तजनी चिढाते
मुझे लोग पगली कहकर,
बनी विरहिणी ढूँढ रही हूँ,
अपना प्रथम मिलन सुदर।
आज लाज पर गिरो गाज है,
मै अधी हू प्रेम विकल,
जिस धुन मे हूँ वही सुहाती,
क्या समझे दुनिया पागल।
धन बटोर धनवान-सरीखा,
खडा सामने सिधु-मदन,
उमड़-उमड़ मैं रति-बाला-सी,
अभी करूँगी आलिगन।

सुदरी

(१)

अयि विमुक्त कुतले! तुम्हारी,
अति सुदर यह चपक मूर्ति,
सुप्त प्राण मे सजीवनि-सी,
रह रह देती स्नेह-स्फूर्ति।
चिर सुवर्ण, जीवन यौवन का—
प्रेम पल्लवित बाल-वसत,

भरता है सुकुमार हृदय में,
कवि कौशल के भाव अनंत।

(२)

तुम लज्जा विनोद से मुख पर,
जब ढँक लेती हो घूँघट,
मैं बहता हूँ मोह-स्रोत मे,
पाता हूँ न मुक्ति का तट।
किंतु फेरती हो करुणामय!
जब सुंदर उन्मत्त नयन,
मै अनग सा कर लेता हूँ,
शत आकर्षण आलिगन।

(३)

देवि, तुम्हारी चचलता से,
सभी ओर है मेरी जय,
सुंदर स्वप्न, मुक्त नव जीवन,
अति रमणीक रहस्य निलय।
चित्रकार के चित्रित पथ पर,
तुम मुसुकाती हो सत्वर,
यह है कौन मत्र, मायाविनि!
यह कैसी लावण्य-लहर।

(४)

सुर-बाला-सी घूम रही हो,

केलि कला-उत्सव मे भूम,
बिहस रही है वसु धरा यह,
गजगामिनि, तव पद रज चूम।
सती तुम्हारी रूप राश पर,
सहसा शिव समाधि भी भग,
फैल रहे हैं गात-गगन मे—
कोटि-कोटि मनमोहक रग।

(५)

आओ मेरी कुसुम-कुटी म,
सु दर सुधा पात्र भरकर,
मै बैठा हूँ भक्त साधु सा,
इस दुनिया म कौन अमर।
भूल गया हूँ विश्व युगातर,
भूल गया हूँ तन-मन धन,
आज तुम्हारे हाथ बिका है,
यह मेरा समस्त यौवन।

नैराश्य प्रेम

(१)

मुझ वियोगी के लिये कर सोरहो शृ गार,
आ रही अभिसारिका भव-भाव-भेद बिसार।

नूपुरों की मृदु सुनाई दे रही झकार,
देखता मैं मोद से अपना सुखी ससार।
किंतु यह क्या ? हो चले कपूर से सुविचार,
बज रहे हैं व्यस्त वीणा के कहीं दृढ तार।

(२)

गूँज कानों म रही मनमोहिनी इक तान,
चौककर मै देखता हर ओर हो हैरान।
है समाई फिर यही धुन—ले उमग अतीत—
आ रही शायद प्रिया है छेडती सगीत।
किंतु मेरी भूल, मै भ्रम से बना अनजान,
द्रुम-लता पर गा रही थी कोकिला निज गान।

(३)

लिए आशा और अभिलाषा बना उद्भ्रात,
कामिनी की खोज म मै हो गया जब क्रात।
तनिक झपकी से खुल घर के कठोर कपाट,
जोह ने सुख से लगा मैं सुदरी की बाट।
नाचने सुख से लगा अनुराग से मन-मोर,
हो गया घायल-सरीखा सुन हवा का शोर।

(४)

एक दिन छाई हृदय मे सुरभि क्या ही मस्त !
हो गए नैराश्य भावो के कलेजे पस्त।

प्रिया-अग-स्पर्श का अनुभव हुआ कुछ वाह !
देखने इकटक लगा उस मोहिनी की राह ।
किंतु मेरी हो गई आशा घडी मे धूल ,
मलय चु बन से खिले थे कुछ जुही के फूल ।

अभाग्य

जब मैं बैठी गूँथ रही थी,
जुही-फूल कल्लोलिनि कूल ,
तब उपवन मे ढूँढ रहे थे,
तुम कैसे मुरझाए फूल ?
भोजपत्र पर जब लिखती थी,
मैं कुछ भाव पूर्ण सगीत ,
व्याकुल हो तब तुम सुनते थे,
कैसे बुलबुल के मृदु गीत ?
करती थी श्रृंगार रूप का,
जब मै कुसुम-कुटी के पास ,
किसके हृदय द्वार पर तब तुम—
बने खडे थे अतिथि उदास ?
जब मै मरती थी वियोग मे,
बहा तप्त आँसू की धार ,
तब वीणा के तार चढ़ा तुम,
छेड रहे थे क्यों मल्लार ?

जब मेरे अभिसार हृदय म—
    था, मुक्ति प्रकाश का ह्रास—
तब तुम क्यों गिनते थे तार ?
    इकटक देख नील आकाश !
उठी हुई थी जब मानस मे,
    राग भरी दारुण दुख पीर ,
लहरों से थे आँख लडाते,
    तब क्यों खड नदी के तीर ?
जब मैं तुमको कु ज-गली म,
    खोज रही थी हो हैरान ,
तब तुम किस लज्जित चितवन का,
    धर हुए थे मन म ध्यान ?
सखि सम्मेलन में जाती थी,
    जब मैं चढी स्वर्ण रथ पर ,
भिक्षुक से तुम माँग रहे थे,
    तब कैसी भिक्षा पथ पर ?

प्रेमी का प्रलाप

(१)

फेंक यूथिका कली, चयन कर रज कण,
    तीर्थ जल ले कहाँ गई नई विनोदिनी ?

लतिका भरी पडी, कमल चुपचाप खडे,
कैसे मुरझा गई सरोजिनी सुरगिनी ?
पीकर मिलन-मद झूमती किशोरी कहाँ ?
खेलने चली किधर प्राण की प्रबोधिनी ?
छूट क्यों गई ललाट की पवित्र राम रज,
करती प्रमोद किस गोद मे प्रमोदिनी ?

(२)

ठुमरी उडाऊँ किस भाँति आज मै रसिक,
देख जग नाटक हुआ हृदय बावला,
मेरी प्राण-वाटिका मे है न रच कु द गध,
घायल पडा मधुप साँवला उतावला !
किसके लिये वरू चटोर मालती प्रसून,
मडरा रही है आसपास भ्राति की बला,
नीद आ रही दृगों मे छा रहा नशा विचित्र,
नाचो छम छम छम स्वप्न मे शकु तला !

कवि

(१)

मुग्ध काल हम सजग सुलोचन,
रसिक शिरोमणि विश्व विलास,
नदन-कानन पारिजात हम,
विश्व मुकुट प्रमदा परिहास ।

वशीकरण, बंधन, अभिनंदन,
हम अनंग रस रंग उमंग,
हम कवि हैं विनोद निशि दीपक,
कविता सुंदर-ताल-तरंग।

(२)

स्वप्न-राज्य के चतुर बटोही,
भ्रांत, दिशा गति रहे विलोक,
बरसाते मधु सुधा संजीवनि,
हृदय हमारा शांत त्रिलोक।
अशुचि कलंक-कंटकित मां के,
पोंछ रहे आँसू हम वीर,
भैरव स्वर से जगा रहे हैं,
जर्जर मलिन स्वदेश शरीर।

(३)

सुनते जग यंत्रणा-गीत हम,
सुनते व्याकुल बालक शोर,
लोल वृंत विक्षिप्त पत्र सम,
उड़ा रहे उर कष्ट कठोर।
उत्तेजित करती पग पग पर,
चढ़ी हमारी भीम मृदंग,
रुधिर-सने हम खड़े जग में,
नग्न-बदन बदले मुख रंग।

(४)

शाही ताज पहन सोते हैं,
भूमि-गोद में हम सानद,
वीणा तत्री लीन बने हैं,
भरे नसों मे मुक्तानंद।
हम कवि हैं सौंदर्य पिपासित,
चिंतित रहते हैं दिन रात,
आए हैं प्रभात रवि से हम,
यहाँ देखने विश्व प्रभात।

(५)

दिन, द्विपहर, निशीथ, निर्जन मरु,
पर्वत प्रांत पुलिन वन झाँक,
उन्मादी से हृदय पटल पर,
लेते सम्मोहन-छवि आँक।
पैठ उरों में—मृदु अधरों में
आँखों में अविरल सुकुमार,
भरते हैं वसुमती प्राण में,
हुलसा कर विज्ञान-उदार।

(६)

हम कवि हैं, कविता बाला से,
करते रहते नित्य किलोल,

हम कवि हैं, दबते न किसी से,
हम विद्रोही जीवन-रोल।
हम कवि, महा निरकुश, उद्भट,
है स्वतत्र यावन इतिहास,
दीपावलि-सी छटा हमारी,
है विलास परिहास हुलास।

(७)

घूम रोष से हम जाते हैं,
शीघ्र सुदर्शन चक्र-समान,
चिनगारियाँ बिछा देते हैं,
अरि पथ पर कर मदिरा-पान।
अतल वितल पाताल तलातल,
अनल अनिल अबर शिव शेष,
पत्र-समान काँप उठते हैं,
देख हमारा क्रोधी वेष।

(८)

हम समीर के प्रलय झकोरे,
है हममें कविता तल्लीन,
हम नव रंगभूमि, कविता है,
एक रसीली नटी नवीन।
उसकी रिनिकि झिनिकि ध्वनि मन मे,
नित्य नाचती उषा-समान,

सिंधु-गोद मे ज्यो निझरिणी,
खेल-खेल गाती मृदु गान।
(९)
झुक झुक सादर शीश झुकाते,
नव रस खड़े हमारे पास,
स्निग्ध मुस्कुराहट विद्युत-छाव,
चमत्कार हैं, हम न उदास।
कथा हमारी यौवन-वन की,
मृदुल मलय-लहरो उन्मत्त,
हम भारती-भक्त भाषा है,
तन-मन से हम पर आसक्त।
(१०)
कुंज-कुंज मे भाँति भाँति के,
हँसते मधुर सुमन सुकुमार,
मँड़राता प्रमत्त अलि सकुल,
बहतो मदुल वसत बयार।
हम किशोर से वद्ध हो चले,
अब भी वही नवीन हिलोर,
ढूँढ रहे हैं, किधर उड़ाती,
रूप गविता ध्वानी-छोर।
(११)
झुके मेघ घनश्याम भयकर,
तडिद्दाम, रवि-कर सहार,

झंझावात असह्य, चपल मन,
रुद्ध कुटी दल, धूमिल द्वार।
दादुर गीत, शून्य पथ निर्मल,
भीषण रार, बद खग-तान,
विशद कदब तले हम लिखते
पावस काल, धरे ध्रुव ध्यान।

(१२)

वर्ण-वर्ण मे प्रेम सुदरी,
नाच रही घूँघट पट खोल,
विश्व-भोग हम भोग रहे हैं,
विमल विषय सुख शाति टटोल।
जिसे कुछ नहीं कहकर दुनिया,
देती मन से शीघ्र बिसार,
मथकर हम निकाल लेते हैं,
उसम ही अमूल्य-सा सार।

(१३)

घोर निदाघ, निकुज नीड-तट,
अर्द्ध-मृतक से छिपे विहग,
विह्वल से सोते कुरग दल,
छोड कुरगिनियों का सग।
शाप भ्रष्ट दृग बद पथिक के,
पृथ्वी तपती तवा-समान,

हम निर्जन मरुभूमि बीच चल,
छोड रहे मोहिनि मुसुकान।
(१४)
इठलाते वन, बाग, नदा-बर,
किशुक, केशर, ताल, तमाल,
मुसकाते बट, बहुल, कु द, कज,
शिखर, शेष, अलि, मत्त-मराल।
मौन बन गोधूलि समय ज्यो,
मधुर कुहकते कोकिल मोर,
हाय, इधर कल्पना हमारी,
तडप-तडप करती निाश भोर।
(१५)
किसी विरहिणी के आँसू से,
हम लेते निज उरपुर सींच,
मृगनयनी की चचल चितवन,
निज नयनों म लेते खींच।
मूर्च्छित मौन पड रहते हैं,
विरह-रोग मे बने अजान,
हम कवि हैं, रागिनो हमारा—
मिलन क्षुधातुर मृत्यु-समान।
(१६)
प्राणोन्मादी हास्य देखकर,
इठलाता सचित्र ससार,

नव साहित्य-ललाट-बीच है,
दीप्त हमारा मंजुल प्यार ।
हम खद्योत नहीं हैं, हम हैं—
एक उदीयमान श्रीमान,
देख प्रकाश प्रखर प्रतिभा का,
होती रवि-मयंक-छवि म्लान ।

तुलसी-स्मृति

(१)

हे अमर कवि ! कविता-गगन के प्रकाश,
विश्व मे विहँस, बरसाओ फूल जय के,
जीवन जगाओ औ' सुनाओ राम-नाम छंद,
सरस बनाओ भाव भावुक हृदय के।
चंदन चढाओ भक्तवर ! हुलसाओ प्राण,
गाओ सुकुमार गीत भारत विनय के,
चरण-कमल धूलि फेंक हुलसी-सपूत !
मृदु मुसकाओ काट भय-भाव-भय के।

(२)

नागरी-ललाट-बीच कीर्ति चंद्रिका-समान,
छाती छवि-सुंदरी उमगिनी विनोद से,

डमरू बजाते डिम डिम डिम भूतनाथ,
उछल रह गणेश गिरिजा की गोद से ।
कोकनाद आसन समेट भारती सुजान,
सरयू किनार गीत सुनती प्रमाद से,
सप्तमी सुहावनी सुधा-कलश भर-भर,
बूँद बरसाती, चूम मेघ मुख मोद से ।

भारतेंदु स्मृति

(१)

भारतेंदु ! किस पुण्य काल म ?
किस प्रतिभा को पाकर ?
रिझा गए हिंदी समाज को,
कौन गीत तुम गाकर ?
गूँजा करती इन कानों मे,
नूतन तान तुम्हारी,
ढलका देती अश्रु दृगो से,
सु-स्मृति आन तुम्हारी ।

(२)

किस ज्योतिर्मय ऋक्ष देश मे,
कौन तपस्या करते ?

किस बूढ़े साहित्य पिता की,
अब तुम सेवा करते ?
सजा रहे हो किस कविता को,
मन वन के फूलों से ?
इस अनाथिनी हिंदी को क्या,
भूल गए भुला से ?

(३)

कौन पिलाकर प्रेम-वारुणी,
चले गए छल कर तुम !
राह ताकते रहे, न आए,
सूख चले आशा-द्रुम !
प्रथम सृष्टि के मौन सरीखे,
चकृत हुए, ठग लाए !
भारतेंदु जीवन धन खोकर,
विश्व मित्र उकताए ।

(४)

आए क्यों न लौट ? फैला दी—
तुमने कैसी माया ?
देश विदेशों मे यश-सौरभ,
हे यशस्वि ! तव छाया !
है हिंदी चिरऋणी तुम्हारी,
कोमल कविता पाकर ,

रिझा गए, हिंदू-समाज को,
कौन गीत तुम गाकर ?
(५)
भूल जायगा कौन अभागा,
वह अनुराग तुम्हारा ?
बहती है साहित्य-नसों में,
मुक्त काव्य की धारा।
धन्य, तुम्हारी काव्य-तृषा थी,
धन्य, स्व गौरव धन था,
धन्य धन्य अति धन्य तुम्हारा—
सुखद काल, यौवन था।
(६)
कीर्ति तुम्हारी अमर हो चुकी,
प्रेम बीज का बोते,
भारतेंदु ! तव पुण्य-स्मृति में,
हम पवित्र हैं होते।
तप्त अश्रु लो, हम दान दो,
पद-रज-कण तुम अपने।
दो वरदान, रहे हिंदी के—
नित्य देखते सपने।
(७)
भूल चाहे हम हिंदी को,
हिंदी हमें न भूले,

प्रिय हिंदी साहित्य देश में,
काव्य-वाटिका फूले।
फैले फूट न, गुन-गुन-गुन कर—
रसिक भ्रमर गुंजारे,
मधुर काव्य की तानें सुमधुर,
वीणा से गुंजारें।

तू और मैं

तू मधुर मेघ मल्लार राग, मैं भैरव-स्वर रण शंख-नाद,
तू तानसेन-स्वर विश्व विदित, मैं शिशु रोदन, दुमद विवाद।
तू रंगभूमि, मैं दग्ध देश,
तू चंद्र किरण शीतल, पवित्र, मैं अंधकार उद्भ्रांत वेष।

(२)

तू देव-भोग भोगी सुजान, मैं कुटिल, क्रूर, पापी, पिशाच,
अपवित्र, निरंकुश, कुल-कलंक, लोलुप, कराल, वैताल-नाच।
चिरकुट लपेट अवधूत धूत,
भिक्षा झोली भर निल नृशंस, हूं ताक रहा नाशक मुहूर्त।

(३)

तू सीता सावित्री सधवा, मैं अंध मृतक विधवा मलीन,
सह दुसह दुःख, कर जी कठोर, मन-ही मन रो-रो उदासीन।

अपने समाज को समझ नीच,
बीभत्स क्षुधा के साथ मौन, हूँ पडी काल-कोठरी बीच।

(४)

तू ध्रुव, मै धूमिल धूम्रकेतु, तू धूलि और मै धूम्र पान,
तू स्वर्ग राज्य, मै नर्क-कुंड, तू अमृत, हलाहल मैं महान।
तू रतिपति विश्व विभूतिराज,
मैं नग्न धडंग पिनाक पाणि, क्रोधी, अविवेकी सजे साज।

(५)

तू विश्व पराजय लिपि जघन्य, मै कुटिल नयन भक्षक कराल,
तू महामत्त गजराज भीम, मै लोहांकुश भीषण विशाल।
तू विरह और मे मृत्यु रात,
तू सरल पुत्र, मै नीच पिता, तू मेघ बुंद, मै वज्रपात।

(६)

तू वृंदावन-वीथी विलोल, मै महा भयंकर कुरुक्षेत्र,
लोथों पर आलोडित कृतांत, कर लाल रक्त चिताग्नि नेत्र।
हन-हन बल उरपुर मे त्रिशूल,
आँसू की टपका एक बूंद, चिल्लाता हूँ मत भूल भूल।

(७)

तू रंगमहल, नर्तकी-नृत्य, मै श्मशान सुख शांत छोड़,
पी-पी नीरस शोणित अधीर, हूँ चूस रहा पंजर निचोड़।
मृत पिंड अनेकों लील-लील,
मैं अग्नि होलिका रहा खेल, हो रहा धूलि धूसरित डील।

(८)

तू कुसुम-कुंतला-कुंज भूमि, मैं वन-माली चांडाल क्रूर,
तू मृग शावक परिहास विकल, मैं दुष्ट, क्षुधित केसरी शूर।
तू प्रेम पाश, मैं काल-दंड,
तू मृदुल मलय-मारुत झकोर, मैं अंधड़ बड़वानल प्रचंड।

(९)

तू सेव्य, और मैं सर्वनाश, भूकंप सरीखा डोल-डोल,
जल्लाद-तुल्य विष-दाँत पीस, खा रहा शक्ति भंडार खोल।
पहचान मुझे, कोमल कुमार,
मैं वह यम हूँ, जिसमें न कभी, बहती कविता की सरस धार।

हिंसक

मैं हूँ प्रचंड मैं महा भयंकर—प्रलयंकर हूँ,
मैं हूँ मदांध, उन्मत्त, भीम हूँ, रवि, शंकर हूँ।
मैं सर्वनाश की आग जलाता, निर्मोही हूँ,
मैं अटल छत्र हूँ, विश्व विदित कवि विद्रोही हूँ।
मैं हूँ समुद्र की लहर जोश में लहराता हूँ,
मैं आसमान में घूम मेघ सा घहराता हूँ।
मेरे चरणों पर मौत लोटती अश्रु बहाती,
विप्लव आंदोलन देख, शक्ति फूली न समाती।
तूफ़ान बना मैं डोल रहा हूँ नभ-छाया में,
खंजर देता हूँ भोंक नीच दुश्मन काया में।

मैं महा निडर हूँ, क्रूर काल की क्रोध नजर हूँ ,
मैं हूँ प्रचड, मैं महा भयकर-प्रलयकर हूँ ।

अशाति

(१)

किससे मिलने आती हो ?
किस सुदूर एकात दुर्ग मे,
बजती है रण तुरी महान ?
किस पथ पर तैयार खड़ा रथ,
कौन सारथी है अनजान ?
करती हो शृगार युद्ध के—
छोड वधू का सुदर वेष !
नत मस्तक है किस पूजा मे ?
कौन करोगी मुक्त प्रदेश ?
अट्टहास से नाच-नाचकर,
मा ! तुम किसे रिझाती हो ?
तीर-कमान छोड, क्यों कर मे,
खड्ग लिए हुलसाती हो ?
कैसा मत्र जगाती हो ?
किससे मिलने आती हो ?

(२)

किससे मिलने आती हो ?

पथ पर फूँक-फूँक रखती हो,
पद्म-चरण तुम कर दृग बंद ।
मा ! मेरा दुर्बल स्वदेश है,
उड़ती है आँधी स्वच्छंद ।
बहते हैं कितने ही भीषण,
अश्रु धार के पारावार ।
फूल, शूल से हूल रहे तन,
आज उग्र से भाव-उदार !

कौन मुक्त-जागरण-गीतमा !
मृत्यु सेज तट गाती हो ?
काल त्रास पाता है, तुमसे,
तुम उससे इठलाती हो ।
क्या न तनिक भय खाती हो ?
किससे मिलने आती हो ?

रणचंडी

(१)

प्रखर अरुण किरणों से व्याकुल,
पृथ्वी तपती तवा समान,

पटी पड़ी नर रुंड-मुंड से—
समर भूमि भीपण अवसान।
कितनी ही शोणित की नदियाँ—
बहती हैं भर भर आवेश,
मार मार ध्वनि वीरवरों को,
शत्रु-सैन्य पर उग्र प्रवश।

(ˉ)

प्रतिहिंसा, प्र तहिंसा की है,
चारों ओर प्रलय हुंकार।
दाँव पेच कितने हो घातक,
नंगी तलवारों के वार।
फड़क रही है वीर भुजाएँ,
उठते प्राणों म तूफान।
कटते, लड़ते, घायल होते,
कितने ही जोशीले ज्वान।

(३)

बंधु को न प्रिय बंधु समझते,
दीन को न कोई भी दीन,
कितने पितृ हीन होते हैं,
कितने होते पुत्र विहीन।
कितनी ही बालाओं के हैं,
छीने जाते आज सुहाग,

वीरवरों के भरे हुए हैं—
  प्राणों मे उन्माद विराग !

(४)

कुसुम-सेज पर जो सोते थे,
  लेकर मान और अभिमान,
उनकी ही लोथो पर कैसे ?
  टूट रहे हैं भूखे श्वान !
बहते थे जो सुख-सागर मे,
  मुख से सके निकाल न आह,
हस्तहीन, घायल हो वे ही,
  आज रहे हैं पडे कराह।

(५)

पटी पडी नर रुड मुड से,
  समर भूमि भीषण अवसान !
प्रखर अरुण किरणा से व्याकुल,
  पृथ्वी तपती तवा समान।
रणचडी ! तू घूम घमकर,
  शोणित से लथपथ हो आज।
जीभ लपलपाती है कैसी ?
  अशनि पात तरी आवाज़ !!

(६)

लाल-लाल कर उग्र दृगों को,
  किन भावो मे हो आसक्त ?

रक्त-कुंड से भर-भर खप्पर,
गट्ट-गट्ट पीती है रक्त।
विकल-लोथ मुख घूर घूरकर,
भाँति-भाँति कर रौद्र कलोल,
क्षण ही में तू उदर दाबकर,
धरे विदारती गोल कपोल।

(७)

फिर तू नाच-नाचकर सहसा,
चमकाकर निज रूप विराट,
तितर बितर लोथों को क्रमश,
खींच, धरणि देती है पाट।
फिर तू उन्हें राँद चरणों से,
शीघ्र बना मुंडों की माल,
पहन, शेष वीरों के मस्तक,
गेंद सरीख रही उछाल।

(८)

लड़ते भिड़ते अपने में ही,
बने इसी सुख के कंगाल,
कोलाहल करते आते हैं,
वैतालों के झुंड विशाल।
तीक्ष्ण नखों से खींच अँतड़ियाँ,
पटक पटककर मृतक शरीर,

एक चरण से चरण चापकर,
देते पल भर म ही चीर।

(६)

तू उनका उत्साह बढाती,
तू गाती वे देते ताल
नाच-नाच फिर तू फैलाती,
अपने व्याल-सरीखे बाल।
अट्टहास कब बद करेगी ?
कब भूलेगी दीर्घ उसास ?
मा रणचडी ! बता बुझेगी,
कब तक तव रसना की प्यास ?

विजयोल्लास

कांप रही रण-मुक्त मेदिनी,
सुन प्रचड हिसक हुकार,
छिपते हैं कैलास गुफा म,
भूतनाथ वैराग्य बिसार।
आँखों से है आग उगलती,
करालिनी-सी मृत्यु अजान,
आती है मा सिह-वाहिनी,
यहाँ उड़ाती विजय निशान।

यौवन लहरो में बहता है,
ज़हर भरा भीषण तूफ़ान,
गति, क्रुद्धा सर्पिणी शक्ति है,
छोड रही फुँफकार महान।
भय से भूपति भाग रहा है
नव सुवर्ण सिंहासन छोड़,
आती है मा सिंह वाहिनी,
अहंकार के हाथ मरोड।
ढाँक फटे आँचल से आनन
भरी नीच वासना उदास,
पता नहीं आसुरी शक्ति का,
कहाँ ले रही दीर्घ उसाँस?
विश्व-वेदना दाँत पीसकर,
खींच रही लोलुप की खाल,
आती है मा सिंह वाहिनी,
कंदुक से अरि शीश उछाल।
तूर्य निनाद करो प्रलयंकर!
अपनी नग्न जटाएँ खोल,
प्रेत पुरी से दौड पडो तुम,
नरक दूत! लेकर निज ढोल।
नाच रही है सड़ी लाश पर,
मरघट की गुरु चिता अधीर,

आती है मा सिह-वाहिनी,
यहाँ बहाती प्रलय समीर।
तैर रही है रक्त नदी म,
प्रतिहिसा कर अरि का खून,
लिखता है यम वज्र कलम से,
सवनाश का लघु मज़मून।
साध रहा उन्मत्त-योग बल,
योगी गुप्त गुफा मे आज,
आती है मा सिह वाहिनी,
फेंक सुनहरा सुदर ताज।
नर मुडों की माल पहनकर,
चलो भग्न मदिर के पास,
झूम रहा है मतवाला-सा
वहाँ रक्त पीकर उल्लास।
भक्त ! सजाओ अर्घ्य, अश्रु जल—
हृदय कमडलु मे भरकर,
आती है मा सिह-वाहिनी,
कर में वर त्रिशूल लेकर !!

प्रकृति !

तुम्हारे दिव्य कुसुम रथ पर,
चढा जादू-सा घूमूँगा,

सरल हूँ, उन्नति के पथ पर,
बढ़ूँगा, सुख से झूमूँगा।
मृदुल फूली फुलवारी में,
हिंडोला मैं बन जाऊँगा,
सुगंधित केशर-क्यारी में,
कली से आँख लड़ाऊँगा।
सुमन-वन में प्रातः रवि-सा,
मधुप-सा मैं मँडराऊँगा,
सुकवि हूँ, कालिदास कवि सा,
विश्व में सुयश बिछाऊँगा।
तुम्हारी छाया के भीतर,
हँसूँगा मैं—इठलाऊँगा,
जलाओ तुम दीपक सुंदर,
पतिंगा मैं बन जाऊँगा।

कवि की पूजा

वन-डाली में न सजे हैं,
जवा-कुसुम चंपा के फूल,
मेरी क्रोध भरी आँखों के,
जहर अश्रु तुम करो क़ुबूल।
अपने खप्पर में रह रहकर,
गर्म ख़ून मैं भरता हूँ,

ज्वालामुखी-समान फूटकर,
अग्नि आरती करता हूँ।
चिता-भस्म गिर गई धूल में,
पागल बना किशोर घमड,
दो त्रिपु ड तुम हृदय-रक्त का,
हे प्रलयकर रौद्र प्रचड!
हूल रहा हू पाप पुरी मे—
मै त्रिशूल, बनकर जल्लाद,
नर मु डों की भीषण माला,
पहन मुझे दा आशीर्वाद।
ताडव नृत्य करो हे शकर!
बन मम कविता के अक्षर,
बिजली बनकर चमक पडा तुम,
श्याम घना मे प्रलयकर।
फिर भुजग-से फु फकारो तुम,
दुनिया के भक्षक विकराल,
कोलाहल म क्राति मचाओ,
करुणा-हीन अनोखे काल!
ले आऊँ नैवेद्य कहाँ से,
छूँछा है स्वार्थी ससार,
देख देख मैं ऊब रहा हूँ,
तव आलस्य-भरा दरबार।

घड़ी घड़ी इन लघु चरणों म,
मस्तक मैं न झुकाऊँगा,
उन्मादिनी सैन्य म तुमको,
मैं निज नाथ बनाऊँगा।

भाषा

आ, प्रवास कर त्राण कठ मे,
कवि सम्राट भामिनी!
सरि-गम स्वर म मुझे सुना तू,
अपनो मधुर रागिनी।
ले करके सौदय, गूँथ मा—
कुसुम हार मन वन मे,
मुसकाती तू ापन्हा कठ म,
ज्योति जगे जीवन मे।
कालिदास की गाथा गा दे,
तुलसीदास की कविता,
इन प्राणो मे शीघ्र बहा दे,
सूरदास स्वर सरिता।
पुलकित थे जिससे पद्माकर,
केशव काव्य सुनाते,

अनुप्रास तू भर दे वे ही—
प्राणो में, हुलसाते।
ले लेकर साहित्य नित्य नव,
तव प्रकाश फैलाऊँ,
मनोरमे ! वह भर के माया,
तूमय विश्व बनाऊँ।
तुझमे ही हो लीन बनूँ यश,
पाऊँ शरत् यामिनी,
सरि-गम स्वर मे मुझे सुना तू,
अपनी मधुर रागिनी।

उषा

शाति से फैलाकर सुदर,
सुनहरी किरणो का आँचल,
बिहँस धीरे से सुर बाला,
रही है प्रमुदित पखा झल।
उधर अलसाई आँखो से,
देखता है जग पागल बन,
सुदरी ओस तरगी पर,
हिलोर लेता है कानन।

कमल के कांत हिंडोले पर,
झूलती है विकास छवि छन,
ढँका फफके लघु फूला से,
धरा का सुंदर सिंहासन।
झलकता मौन मचलता है,
मुग्ध सौदर्य रूप क्षण क्षण,
झाँकता नीडों से खग दल,
किसी वन का सुन आमंत्रण।
प्रकृति की प्यारी ऋषि कन्या,
बिखर कुंचित केश, मगन,
लता पत्रों से इठलाकर,
प्रेम से करती कुसुम-चयन।
पड़ी है मूर्च्छित ज्योति मृदुल,
खुले खेतों पर आनंदित,
गुदगुदाती है प्रकृति हृदय,
सुरभि की डाली कर अर्पित।
मधुर निद्रा की गोदी से,
जगा है जग कर अभिनंदन,
घुमा दे देवि ! स्वर्ग रथ तू,
छिड़क दू भावों का चंदन।

वधू

छली गई हो इस गृह में तुम,
किस सुहागिनी की मति से ?
गजगामिनियों के सम्मुख तुम,
चलती हो मराल-गति से।
घूँघट पट से ढँके रहोगी,
कब तक तुम चद्रानन को ?
क्रीड़ा कर तुम मुक्त करोगी,
कैसे निजन कानन को ?
लज्जा का है क्यों तुममे इतना आवेश !
देख न सकती हो दपण मे अपना वेश !
अलकार से लदी हुई तुम,
परिजन को सुख देती हो,
देख किसी को झट लज्जा से,
दृग नीचे कर लेती हो !
कैसे हैं यह भाव महान ?
करते किसका अनुसधान ?
तुम प्रफुल्ल शारद प्रभात की,
हो लज्जिता लता प्यारी !
या मुकुलिता कली हो कोई,
नदन-वन की सुकुमारी !

तुम समीर की चुमकारी हो,
या हो राग-भरी कविता ?
अहे इंदुकांते ! बतलाओ,
क्या हो, किस सुख की सविता ?
प्रेम-भक्ति की आभा मुख पर म्लान,
उछली पड़ती लेकर एक उफान !
कितने संचित रखे हुए हैं,
चुन चुनकर दिल में अरमान ?
कितने भावों के उठते हैं,
रह-रहकर मन में तूफान ?
कौन गुप्त मोहिनी कहानी,
हमें सुनाओगी, सजनी !
तुमसे कट जाएगी क्षण में,
क्या हेमंतमयी रजनी ?
यह लावण्य मिला है तुमको किस श्रम से ?
हम अजान-से वधू ! पूछते हैं तुमसे।

रास्ते का फूल

(१)

मुझे तोड़ कर फेंक गई है,
इस बन में बसंत बाला ,

मरा जा रहा हूँ मुरझाकर,
खोजूँ कहाँ मधुप-प्याला ?
हँसता वध्या-मरुस्थलो है,
सूनी पडी लता की गोद ,
काँप रहे हैं पत्र विटप के,
रह रह करती हवा विनोद ।

(२)

दो दिन और हसूँ, खेलूँ मैं,
कैसे इठलाऊँ—गाऊँ ?
कैसे इच्छा करूँ, वधू का—
कठ हार मैं बन जाऊँ ?
साथक करूँ जन्म मै अपना,
दिखलाऊँ अनत अनुराग ,
पडे पडे यह साच रहा हूँ,
कहाँ उडाऊ शुष्क पराग ?

(३)

उठते हैं सुकुमार बवडर,
अभिलाषा के मन-वन मे ,
पता नही शृ गार करूँ क्या,
धूलि-भरे नवयौवन में ।
आशा है, सध्या आते ही,
आवेगी मालिन चचल ,

बडे प्यार से मुभ्क उठाकर,
भर लेगी प्रसून अचल ।

अरण्य बाला

यच्-हाट में प्रथम प्रथम तुम,
बेच हृदय विरही के हाथ,
उतर पड़ी हा विजन विपिन पर,
श्यामा मेघ परी के साथ ।
पहन कठ म कुद माल तुम,
फूली नहीं समाती हो,
ब दावन की विनोदिनी-सी,
मधुर-मधुर मुसकाती हो ।
मल देती हो, साँभ्क-समय,
गो धूलि गाल पर नर्म गुलाल,
विटप-ओट में छिप जाती हो,
छोड़ रूप छाया तत्काल ।
चुपके से निहार यौवन-सुख,
सोच वासना अभिलाषा,
प्राणों बीच दबा लेती हो,
भोग विलास भरी भाषा ।

कुंचित केश कलाप बीच तुम,
साज सेवती दल सुकुमार ,
नील पीत उज्ज्वल फूलों को,
गूँथ रही हो बारबार ।
विभावरी में, तम छाया में
जाती चमक रूप-चपला ,
भोजपत्र पर क्या लिखती हो ?
कालिदास की शकुंतला ।
बेलि गृहांगन मध्य मूर्ति-सी,
करती हो क्या सोच विचार ?
रंग बिरंगे वसन पहनकर
तुम्हें बुलाते सुमन कुमार ।
कोई चिबुक चूमते हैं, तो—
कोई सुहलाते काया ,
मलयानिल में झूल-झूलकर,
कोई छूते हैं छाया ।
कभी राग में भर जाती हो,
खींच रूप-गर्विता हिलोर ,
चंद्र किरण सी बिखर विश्व में,
सुधा सींचती हो सब ओर ।
फैल फैल तरु शाखाओं पर,
बेलें शीश झुकाती हैं ,

मृत्यु मुखी कलियाँ तुमको पा,
नव जीवन बल पाती हैं ।
मधुप-मडली इधर उधर उड,
तुम्हे छेडती है दिन रात,
पिछला ऋण क्या भूल गई हो,
अयि वासनामयी विख्यात ?
नदन कानन इद्र झील की,
मधुर करोरा कटकिनी,
अकस्मात क्यो यहाँ खिली हो,
भोर स्वप्न सा सरोजिनी ?
श्वेत शिलापट पर बैठी हो,
बनकर चपल चाँदनी रात,
किस व्याकुल से यहाँ अकेली—
करती हो आँखों से बात ?
फर फर उडा हवा मे आँचल,
इन्द्र धनुष दिखलाती हो,
इद्र-जाल रचकर पगली-सी,
पागल किसे बनाती हो ?
प्रेम सोम रस तुम पीती हो,
शिशु खजन-गति-गजन कर,
रति-सी अद्ध नग्न साती हो,
मदन राज मन मथन कर ।

दक्षिण पवन चूम कोमल मुख,
पश्चिम को उड जाता है,
अयि वल्कलधारिणी ! पपीहा—
पिए प्राण, इठलाता है।
कभी-कभी अज्ञात यौवना
सी, हँसती हो वारवार,
कभी स्वय वैराग्य-वेष से,
खेला करती हो अभिसार।
प्रकृति रगिनी, दुख मे, सुख में,
चिर सगिनी तुम्हारी है,
हास्यमयी हो, प्रणय पियासी !
बलिहारी— बलिहारी है।
मृणालिनी या कटकिनी हो,
कुल कलकिनी, करुणा-कोर ?
या विधुरा व्रजागना हो तुम,
उन्मादिनी — समुद्र हिलार ?
पचवटी की जनक-नदिनी,
शैव्या, तरुणी—तपस्विनी—
सत्यवान की सावित्री या,
काल विजयिनी सुहावनी ?
बिटपों पर, सर-सोपानों पर,
पथ पर, पुरइनि पत्रों पर—

जहाँ-तहाँ तुम लिख आई हो,
विरह-काव्य अतिशय सुदर।
पढकर पथिक भूल जाता है,
सजनी री! चिल्लाता है,
भिक्षुक-सा बन ग्राम-ग्राम को,
धूल छानता जाता है।
कर्णपात कर तुम वधिरा-सो,
सुनती हो अशाति-सगीत,
उसे चिढाकर चल देत हो,
करती हो अभिनय अभिनीत।
ग्रीष्म काल म ही वसत आ,
तुमको गले लगाता है,
चु बन कर, नव मुकुल मजरी,
सादर तुम्हे पिन्हाता है।
कस कचुकी लज्जिता-सी तुम,
खीच भूमि पर वक्र लकीर,
सूय-मुकुट धारण कर, किस पर—
रीझ रही हो आज अधीर?
आशीर्वाद भाग्य की तुम हो
केशव की कविता-बाला,
वर्तमान ऋषि सन्यासी दल,
आज बना है मतवाला!

अनाघ्रात कलिका अलबेली,
अनख छिन्न, नव पल्लव सी,
उपासिनी, अविद्ध मोती-सी,
नग्न काति, शरदोत्सव-सी।
अनघ भोग के लिय तुम्हारा,
यहाँ कौन अधिकारी है?
विधि की चतुर चित्रकारी है,
कश्मीरो फुलवारी है।
मुक्त धार से झर झर-झर झर,
झरना झरता जहाँ प्रमत्त,
कनक वर्ण-सी, वहाँ ले चलो,
खीच हमारा उर उन्मत्त।
जीवन अग्निहोत्र मे कवि को—
कविता फूँकी जाती है,
मिलन स्वप्न है, किंतु मिलन को,
छाया हमे सताती है।

विरही

(१)

बनूँ किस परिचित का महिमान?
सुनूँ किस कोकिल की मृदु तान?

खोजता हूँ, अनजान समान
प्रिया की फूलों मे मुसकान।

(२)

किसी के चरण चिह्न अवलोक,
कल्पना गात लेता हू रोक,
धूल भर अजाल म चुप-चाप
लगा लेता हूँ दृग मे आप।

(३)

खिली है जो सु दरि गभीर,
पद्मिनी लघु तडाग के तोर,
उसी का मुख हूँ रहा निहार,
भृ ग सा उड उडकर उस पार।

आँधी

(१)

पगली विषम वायु, मै हूँ न गयदिनी-सी,
मै हू यम-दूतिका, करालिका करालिनी;
मैं हूँ फुफकारती भुजागनी प्रमत्त एक,
कालकूट-तुल्य शीघ्र मृत्यु चक्र-चालिनी।
विकट, पिशाचिनी, कुरूपा भी प्रपच भरी,
मै हूँ अभिमन्यु-युद्ध चाल प्रण पालिनी,

चुनती नुकीले कुल-कटक कठोर ढूँढ,
करूँ रखवाली विश्व-वाटिका की मालिनी।
(२)
भीषण अनत-साँस, नायिका अधर्म भरी,
पी अति अप्रीति मद प्याले मस्त झूमती;
खून कर देती, खून चूसने पडे जो नित्य
घोट अभिमाना गले, ध्यान भरी घूमती।
उद्भट अपार, मैं न डूबती अचभे बीच,
कभी वरवरों के भी चरण न चूमती,
जाती दुतकारी, पर मार किलकारी, नगी,
नाचती कृपाण सी प्रचड मैं न ऊबती।
(३)
धाराधर कृष्ण-वर्ण पूर्व के अनेक उठ,
पश्चिम दिशा मे खींच दक्खिनी दिखाऊगी,
गरज गिरेगी गाज, प्रलय मचेगा घोर,
शकर-समान रण भीषण मचाऊँगी।
बन के अभागिना न लूँगी निज आँख मूँद,
वासर उजाड़, तम ऊधम उठाऊँगी,
बरस पडेंगे मेघ-लोचन विलोक-छवि,
तरणी अनोखी मँझधार मे डुबाऊँगी।
(४)
कलम कवीश्वर के कर से पडेगी छूट,
दुर्जन दबेंगे, शात शाति ही न पावेंगे;

सूम का-सा सोना लाल लेगी छिपा गोद मे मा,
भूत, वर्तमान त्या भविष्य भूल जावगे।
मोद मुसकान में गिरेग गम आँसू टूट,
कपित तरग सातो सागर उठावगे,
दूँगी लगा आग, जल जायँग कलेज कुल,
यत्र मत्र तत्र काम एक भो न आवगे।

(५)

विरही रहा जो मर पाकर विजन मोन,
ध्यान सजनी का धरे रजना बिताता है,
कटक-सरीखा महा दुर्बल शरार लिए,
बैठा-उठा जाता नही, चिंतित दिखाता है।
जीवन जलाता, शीश फोडता अभागी बन,
पागल पुराना बात वेतुकी उडाता है,
मार मार धक्के खोल दूँगी दृग अतर के,
मूढ, देख सामने कराल काल आता है।

(६)

खड़ी जो विनोद-भरी सु दरो समुद्र तीर,
बालिका समान क्या भरेगी सिसकारियाँ ?
नागिन लटे जो लहरातीं साथ आँचल के,
झपट उडगी ले कपोल चुमकारियाँ।
रोष मे भरेगी तान भोहे तलवार तुल्य,
फेक लोचनों से अविराम चिनगारियाँ,

सबला बला-सी बनी अबला करेगी धूम,
खाक मे मिलेगी फली फूली फुलवारियाँ।

(७)

यौवन-सरीखे मस्त भूम जो रहे हैं द्रुम,
पटक पहाड़ों मे हँसूगी यम-जाली मैं,
वल्लियाँ उखाड, बेलि-मडप उजाड़ चट,
छिन्न भिन्न दूँगी कर पत्र बला काली मैं।
खिले जो प्रसून हैं जुही के तारो के ही तुल्य,
नोच असरों मे उडा दूँगी, भय पाली मैं,
दीपक घरों के बुझा, देख दुनिया के दृश्य,
लौट ही पड़ूँगी, ले कलक मतवाली मैं।

प्रवासिनो से

बालू-कण हूँ, दबा हुआ हूँ,
चल चरणों मे म उस पार,
उमड़ उमड़ निज लघु लहरो मे,
दूर बहा तुम ले जाओ।
भादों का प्रभात हूँ झर-झर—
झरना-सा झरता चुपचाप,
तुम चचला कनक-रेखा-सी,
चमक चमककर मुसकाओ।

व दावन का नटनागर हूॅ,
माधव हूँ, मैं हूॅ गोपाल,
रासरग मे व्रजबाला-सी,
तुम राधा-सी इठलाओ।
कामदेव हूँ अति सुदर हूॅ,
विश्व विमोहन कर श्रृ गार,
चिर यौवना सती-रती-सी तुम,
कुसुमहार आ पहनाओ।
आशुतोष हूॅ, भूतनाथ हूँ,
सुन डमरू की डिम् डिम् ध्वनि,
उमा भवानी! झूम-झूम तुम,
कोई मधुर गीत गाओ।
कुटिल हूॅ, न कामी किशोर हूॅ,
हँसता ऋतुपति फूल-समान,
तुम रसमयी प्रम मदिरा-सी,
इन अधरों म छा जाओ।
डड-कमडलु ले विरक्त-सा,
घूम रहा द्रोही उद्भ्रात,
तपस्विनी बाला सी पथ पर,
छोड़ कुटी तुम आ जाओ।
दो दिन का मेहमान और हूँ,
आता है अब अत समय,

आलिगन कर चिता-सरीखी,
तुम श्मशान म जल जाओ।

वीरांगना

(१)

तान के उलगिनी कमान, तीर खींचो तुम,
खून से भरी कटार खोंस लो कमर म,
रक्त सरिता में तैर शोणित उछालो खूब,
लपटे उठाओ द्रत आग-सी नजर म।
घायल कराहत स्व अरि को विलोक हँसो,
गदर मचाओ निज नाजुक सफर मे,
नाचो छम-छम-छम पहन कपाल माल,
चकित निहारो जय चडिका ! समर में।

(२)

सिहिनी समान लो जँभाइ—अँगड़ाई छोड़,
रौंद रौंद लाश होठ अपने चबाओ तो !
बाँध लो भुजग केश बैठ शत्रु-छाती पर,
खप्पर पटक रोम रोम फड़काओ तो !
सो रहे तुम्हारे लाल आज सुकुमार बन,
मार-मार थप्पड करालिनी ! उठाओ तो !

नोच-नोच फक दो बदन से विलास-हार,
कालिका ! स्वदेश म प्रलय-गीत गाओ तो !

चिंतिता

नदी-तीर व्याकुला शिथिल-सी प्रिय शृ गार उतार,
शिलाखड पर कौन मौन सी बैठी है उस पार ?
ढुलक रही मुरझ कपोल पर गर्म अश्रु की धार,
भींग रहा उर, छिन्न हो गया है प्रफुल्लता हार।
कर निशीथ-चिंता बाला ने तडप कर दिया भोर,
किसी ओर भी सफल कामना का न मिल रहा छोर।
सघन घनो म चमक गई थी मिलन तड़ित उस रोज,
अलसाई आँखे करती अब जीवन धन की खोज।
सूखे अधरों में न दिखाती वह पिछली मुसकान,
शरच्चद्रिका-सी छवि उसकी हाय ! हो गई म्लान।
आज ढह गए सौख्य-सदन वे हृदय हुआ श्मशान,
श्याम विरह म जले जा रहे विरहिणि के प्रिय प्राण।
व दावन की बीथी भूली व्रज पुर कोसों दूर,
भटकेगी किस मौन मार्ग मे वह छवि छटा विसूर।
यहाँ कौन सुनता है उसके ऊँचे चिंतित चाव,
इकटक जल-तरग म अपने बहा रही है भाव।

कहाँ नलिनि को अब आता है इसके सम्मुख लाज ?
नीड़ों में विहग-दल उसकी हँसी उड़ाता आज।
अपनी चालों पर मतवाला करता नृत्य मराल,
भरता है चौकड़ी कुरंग-दल, चतुर खेलकर चाल।
कितनी तीव्र लालसा इसके होगी, हे भगवान !
असमय में क्यों मुरझाती है यह लतिका हैरान।
रह रह गूँज रहे कानों मे वे अतीत के गान,
देता मुरली एक बार भी क्यों न मोहिनी तान ?
किस निर्जन प्रदेश मे पकड़े ग्वाल-बाल का छोर ?
आँखमिचौनी खेल रहे हैं किस तन मे चितचोर ?
इसे जलाने के हित अथवा वनपपिहा निरुपाय—
प्राणों के प्यासे रटते हैं श्याम 'पी कहाँ' हाय !!
अपना सुंदर भवन छोड़कर आई इतनी दूर,
फिर भी यहाँ, कहाँ कलपाती, है चिंता में चूर।
कितनी ही कल्पना उठाकर बनती है अनजान,
होती है निराश भावों से और अधिक हैरान।
क्यों इसने स्वीकार किया है यह पागल-व्यवसाय ?
इसे कौन सी व्याकुल धारा बहा रही है, हाय !
किस नाटक के वे नट-नागर बने अनोखे पात्र ?
आशाओं के चित्र हो रहे हैं मरीचिका मात्र !!

लांछिता

छोड़कर तरण की कुटी निज भेष भाषा भूल,
मैं चली ज्यों साधना बन के चयन कर फूल।
त्यों दया-जल हाय! तुमने वह दिया बरसाय,
बह चले मेरे कुसुम, मैं हो गई निरुपाय।
ले हृदय की ज्योति, दीपक भी जलाया एक,
छेड़ दी ज्यां आरती के गीत की इक टेक—
त्यों चला तुमने अमित तम से भरा तूफान,
कर दिया मेरी कनक-लौ का हरे! अवसान!
योगिनी बनकर जगत की मोह-माया छोड,
मै लिए नैवेद्य बैठी सामने कर जोड़।
पूछत हो कुछ नही क्यों ?—"दु खिनी तू कौन ?"
प्राणधन! क्यों या खडे पाषाण-से तुम मौन ?
मोह-नौका मे चढी ले प्रम का पतवार,
ज्यो चली मै देखने अभिसार छवि उस पार।
त्यों उठाकर रुद्र लहर, दे प्रलय-हु कार,
विश्व-सागर मे डुबाते, क्या करू —आधार!!

उदास दीपक

सिसक रहे हो लिए कौन-सी दारुण व्यथा हृदय में?
रूप ज्योति कर मलिन, काँपन हो किस भय में?

कहाँ गया वह स्नेह निशा का, वह सौंदर्य दुलारा ?
किस कोने में पड़ा सो रहा वह ऐश्वर्य तुम्हारा ?
नव प्रमोद सब चले गए,
अकस्मात तुम छले गए !
किस विषाद की गहरी छाया,
रुला रही है प्यारे !
व्याकुल से झिलमिला रहे हो,
बने भोर के तारे।
शर्वरीश की छटा मनोहर किस छवि ने आह्लास किया ?
छीन तुम्हारी लौ किस लय ने रवि के साथ प्रकाश किया !
मदमाते दल के दल आते अब वे कहाँ पतंग ?
करते प्राण समर्पण तुम पर तरुण रंग के संग !
जाग रात्रि में, गिन मणिमाला—
विरह-सेज पर सोई बाला।
शून्य भवन है, साज निराला,
उषा-काल में, उषा सरीखी बिछा रही है रूप प्रभा।
हे दीपक ! उसके स्वप्नों पर कर दो अर्पण क्षीण विभा।
हो उदास भावों का मेल,
जाग्रत् जग देखे यह खेल।

प्रार्थना

चढकर चद्र किरण रथ पर,
फूल विखेर विरस पथ पर,
भ्रमरी-सी मधु पियो अकेली, करो केलि, गु जार, विहार।
सजनि ! साज सोरह शृ गार।
कोयल से सिखकर सगीत,
फैला अपना आँचल पीत,
ाचो, गाओ और करो तुम, वीणा की सु-मधुर झकार।
सजनि ! साज सोरह शृ गार।
विश्व सिधु मन मथन कर,
निझरिणी-सी झर झर कर,
हती हुई चली आओ तुम, पगली-सी दा भुजा पसार।
सजनि ! साज सोरह शृ गार।
देवा से लेकर वरदान,
त्रिभुवन के पुलकित कर प्रान,
ब सजाओ सोच-सोचकर तुम कवि का झलमल दरबार।
सजनि ! साज सोरह शृ गार।
दिखला दिव्य सुनहरा, भोर,
सबको सुधा वारि मे बोर,
पनी ओर खींच लो चुपके, सुख, सौंदर्य, सु-मन ससार।
सजनि ! साज सोरह शृ गार।

बंधन

मेरे शिशु-जीवन में तुमने,
विमल सरलता का कर दान—
जननि-गोद मे हँसा खिलाकर,
सिखलाया है स्नेह महान ।
मुझ अबोध का लगा चूमने,
प्रफुलित मुख मोहित ससार ,
जन्म भूमि के गृह आँगन मे,
खेल खेल में बना कुमार ।
लगा खींचने चपल उँगलियों—
से मैं धूलि-कणों पर चित्र ,
कितने ही उस समय मिलाए,
तुमने समवयस्क नव मित्र ।
बता दिया तुमने ही मुझको,
क्या है सुख, क्या दुःख कठोर ?
ऐसी हवा बहा दी तुमने,
यौवन को बह चली हिलोर ।
फिर स्नेह-मद पिला तुम्हीं ने,
सिखलाया अनंत अनुराग ,
मुझे मत्त कर तुमने मुझको,
दिखलाया ऐश्वर्य विभाग ।

धनी बनाकर तुमने मुझको,
फिर दे डाला यश अभिमान,
निज अटूट माया बधन म,
फिर बाँधे तुमने मम प्रान।
जीवन धन! पर भूल गए तुम,
मुझ बताना अपना नाम,
किसके मदिर म जाकर मैं,
किसके आगे करूँ प्रणाम।
किस अदृष्ट की ओर खडे तुम,
देख रहे यह गूढ़ विलास,
छिपते हो, किससे करते हो,
क्षण-क्षण म मेरा उपहास?

प्रेम

(१)

यमुना की दिव्य उमग भरी,
छोटी मृदु मधुर तरंगों में,
कल-कल ध्वनि में, तट-तरु दल मे,
रमणीय रसीले—रगों में।
साजों मे मेरा ध्यान न था,
मनमें कुछ उनका ध्यान न था।

मैं था उदास, कमनीय कुसुम-मुख मुरझाया था,
हे भगवन्! तुमको उधर नहीं मैंने पाया था।

(२)

गिनता बालू-कण रहा समय मेरा कट जाता,
मुझ-से व्याकुल का क्लेश समय ऐसे हट जाता।
आशा थी मेरी झूठ व्यर्थ सी माया,
सुनते चरण ध्वनि चौंक पड़ा, उकताया।
जानूँ में मैंने छिपा लिया सिर अपना,
फिर लगा देखने नाथ! तुम्हारा ही नव सपना।
मानों कण-कण में मंद-मंद तुम मुसकाते हो,
माधुरी-मधुर अनुराग रसभरी बरसाते हो।
मैं मिलने को हुलसाया,
दृग खोल सामने आया।
तुमको न कहीं भी पाया!
क्या देखा? है सब शून्य, घिरा तम निर्जन पट है,
है यह न भोग प्रसाद विकल यमुना का तट है।

(३)

ले-लेकर लंबी साँस, भर रहा ऊँची आहें,
रह-रहकर सहसा ताक रहा त्रिभुवन की राहें।
बालू में उँगली नाम तुम्हारा लिख देती है,
बालू ही तो फिर हाय! तोप उसको लेती है।

क्या करूँ ? लिए उद्भ्रात प्रेम,
किस स्वर से गाऊँ ?
कह दो, मेरे चित चोर !
तुम्ह मे कैसे पाऊँ ?

गध-हीन कुसुम

प्रकृति-छवि देख भूले, लुब्ध फूले,
हँसे धोमी हवा पर मस्त झूले।
निशा भर प्रेम से भय-भाव छोडे,
रहे क्या खेलते परिवार जोड ?
रमी आँख किसी की कब कला पर ?
सबेरे गिर गए मुरझा धरा पर।
विरह सताप से सूखी न डाली,
लताओं ने न क्रदन ध्वनि निकाली।
न अलिकुल ने मनाहर गीत गाए
रसिक माली न भूले पास आए।
हुए उपहार प्रमदा के न तुम, हा !
बने तुम व्यर्थ ही कोमल कुसुम, हा !
किसी से क्यों न तुमने मान पाया ?
न विस्तृत विश्व म ही स्थान पाया !
अनेको भव्य मन के भाव खोकर,
पड हो धूलि म क्यो म्लान होकर ?

किसी कवि ने न तुमको क्यों उठाया ?
कलेजा चीरकर अपना दिखाया ?
तनिक-सी क्यों सुरभि तुमम न आइ ?
कहाँ की क्रूर नीरसता समाई ?
कहो, किसके लिये उपयुक्त होगे ?
पदों से रौंद किससे मुक्त होगे ?
सुमन ! क्यों मन न पाया मस्त तुमने ?
किया क्यों वन-सुयश रवि अस्त तुमने ?

व्याकुल

तरल तुषार शिला-सी गल-गल,
गिरती जर्जर देह अजान,
मैं जिस पथ पर घूम रहा हूँ,
क्या वह पथ है विमल महान ?
समझ म न आता सारथि बन,
क्यो मैं हो जाता हूँ क्लात ?
मनमें मुझे रुलाया करता,
क्या जानूँ किसका देहात ?
फेंक गई थी छिन्न भिन्न कर,
मालिन दो दिन का यह फूल,
बाल सखा-गण हूल रहे थे,
छिप छिप उर म तीक्ष्ण त्रिशूल ।

बुलबुल के बोलों म पलकर,
धूल रुधिर से रँगकर हाथ,
खेल-खेल पर्वत शिखरों पर,
मैं अनाथ से ~आ सनाथ।
आया प्रबल बवडर, लहर—
मार रहा सागर ससार,
जीव जतु ऊपर उतराते,
कहाँ अपरिचित प्रिय परिवार?
वज्रपात से घायल होकर,
रोता हूँ मा! तुम्ह पुकार,
मुझ बालक की जीवन-नौका,
कैसे पहुँचेगी उस पार?

वधिक

विकसित नव सुमन सरल सफेद,
वनमाली सुर तरु गया सींच,
धूर्जटि समान कर लाल नेत्र,
इस फूल को न तू तोड़ नीच!
यह किसी देव का दिव्य दान,
माधवी लता का बिछी सेज—
सो रह अचेत बालक-समान।

दे पटक भूमि पर धनुष-बाण,
दे फेंक अधम ! खूनी लिबास,
मत उगल नागिनी-तुल्य ज़हर,
कर प्रकृति का न जीवन उदास।
छोटे विहग छौने अजान,
सो रहे नीड़ मे पर समेट—
मत मार डक वश्चिक-समान !
खेलते नदी तट नीलकठ,
रुक रुक चलते मोहित मराल,
भरते छलाँग मृग झुड पुलक,
चखते कोकिल रसमय रसाल,
छा रहे मेघ समुदाय जोड,
चातकी चित्र-सी खडी मौन—
मत अकस्मात गर्दन मरोड।
सुन कृषक-बालिका का विहाग,
सुन कामधेनु शिशु की पुकार,
ले देख, अस्त रवि क्षितिज तीर,
स दयमयी धरती निहार।
लेती कुरगिनी कुसुम घ्राण,
दुर्मद ! कपाल पर मार न तू—
जल्लाद-तुल्य विकराल-बाण।
अवधूत ! बाँध ले जटा जाल,

बुलबुल के बोलों म पलकर,
धूल रुधिर से रँगकर हाथ,
खेल-खेल पर्वत शिखरों पर,
मैं अनाथ से न्आ सनाथ।
आया प्रबल बवडर, लहर—
मार रहा सागर ससार,
जीव जतु ऊपर उतराते,
कहाँ अपरिचित प्रिय परिवार?
वज्रपात से घायल होकर,
रोता हूँ मा! तुम्ह पुकार,
मुझ बालक की जीवन-नौका,
कैसे पहुँचेगी उस पार?

वधिक

विकसित नव सुमन सरल सफ़ेद,
वनमाली सुर तरु गया सींच,
धूर्जटि समान कर लाल नेत्र,
इस फूल को न तू तोड़ नीच!
यह किसी देव का दिव्य दान,
माधवी लता का बिछी सेज—
सो रह अचेत बालक-समान।

दे पटक भूमि पर धनुष-बाण,
दे फेंक अधम ! खूनी लिबास,
मत उगल नागिनी-तुल्य जह्र,
कर प्रकृति का न जीवन उदास।
छोटे विहग छौने अजान,
सो रहे नीड़ मे पर समेट—
मत मार डक वश्चिक-समान !
खेलते नदी तट नीलकठ,
रुक रुक चलते मोहित मराल,
भरते छलाँग मृग झुड पुलक,
चखते कोकिल रसमय रसाल,
छा रहे मेघ समुदाय जोड,
चातकी चित्र-सी खडी मौन—
मत अकस्मात गर्दन मरोड़।
सुन कृषक बालिका का विहाग,
सुन कामधेनु शिशु की पुकार,
ले देख, अस्त रवि क्षितिज तीर,
स दयमयी धरती निहार।
लेती कुरगिनी कुसुम घ्राण,
दुर्मद ! कपाल पर मार न तू—
जल्लाद-तुल्य विकराल-बाण।
अवधूत ! बाँध ले जटा जाल,

ले रमा भस्म तन म पवित्र,
कर पद्मासन से शाति पाठ,
मत खींच हृदय म हिस्र चित्र।
छिप छिपकर लूट न रत्न-हाट,
अरि! निरपराध के स्वप्न मे न—
क दुक समान लुढका ललाट।
मत पहन गले मे मु डमाल,
मत लगा मुकुट मे मोर पख,
मत भुजा, उठाकर प्रण कुपात्र!
अपयश का फूँक न मौन शख।
मत विहँस विदेशी!! शाप भ्रष्ट!
दिल खोल पी न ससार खून,
उन्माद से न कर धर्म नष्ट।
पातकी! छोड वीभत्स क्षुधा,
मत बन दुनिया में मोहताज,
तू अमृत पान का अधिकारी,
क्यों ज़हर पी रहा मूर्खराज!
आ प्रेम-बाग मे कर विहार,
जीवन चाँदनी चार दिन की।
है अत हर तरफ़ अधकार!!

वेदना

द्वार खटखटाते ही तेरे,
मैंने अपना सब कुछ खोया!
वारवार सिसककर रोया।
भूले अपना और पराया,
भूल गई सब ममता माया,
केवल अंधकार-सा छाया,
तू ऐसी तल्लीन हो गई—
मृत्यु-दशा में मैं हूँ गोया!
वारवार सिसककर रोया।
देख न पडती हाय! जवानी,
हृदय हो रहा पानी पानी,
बढ़ती व्याकुलता—हैरानी,
अब क्या करूँ, कहाँ मैं जाऊँ—
जले आँसुओं से तन धोया,
वारवार सिसककर रोया।
मोह-लुटेरा! तू मत लूटे,
कुल क्लेशों का बंधन टूटे,
यह नश्वर शरीर ही छूटे,
देख रहा हूँ आह-बारि में—
जग-जीवों का भाग्य भिगोया!
वारवार सिसककर रोया।

मैं थक गया व्यथा सह-सहकर,
'प्यारे' परम ।पिता कह-कहकर,
पड़ा कराह रहा रह रहकर !
सचित किए पड़े सुख सारे,
मैं न सुखो में सुख से सोया।
वारवार सिसककर रोया।

सगे सात्वना दे, रोते हैं,
जीवन क्लेश कठिन होते है,
किंतु समय से सब खोते हैं,
मै क्या कहूँ ? किया क्या मैंने,
व्यर्थ बोझ पापों का ढोया।
वारवार सिसककर रोया !

जब यह दुनिया भा जाती है,
यदि सुध किंचित आ जाती है,
तो पीड़े ! तू गा जाती है,
अरे अधम ! अब वही काट तू—
जो जीवन-खेतों मे बोया।
वारवार सिसककर रोया !

अंधकार

हत्या कर प्रचंड रवि की,
आँखें फोड़ किसी छवि की,

चिता भूमि पर नग्न नाच तू, लील रहा है किसकी लाश ?
अरे भयंकर सत्यानाश!
चक्र सुदर्शन! विद्रोही!
निपट निरकुश! निर्मोही!
क्षमाहीन दुर्वासा-सा तू टहल रहा है क्यों उस पार ?
विश्व-शक्ति का कर सहार!
रत्नाकर-समान वन मे,
लूट बटोही-सुख छन म,
खून पी रहा गद्-गद् तू, किस दुर्बल का उदर विदार ?
ओ प्रलयंकर! भीम विकार!
फैल विकट बादल-दल सा,
खेल खेल खूनी खल-सा,
मूर्ख! बना भूकप भयानक, कँपा रहा क्यों कलियुग-प्राण ?
अरे नीच निश्चर! पाषाण!
ओ पिशाच! चुपके-चुपके,
विटप ओट में छुप छुपके,
किधर आ रहा तू वर्बर-सा अभिसारिका वधू के साथ ?
अट्टहास कर अरे अनाथ!
बन भूखा भुजग काला,
ज़हर उगलता मतवाला!
फुफकारता रगता है क्यों देश देश मे ओ दिग्भ्रात ?
कालरूप धारण कर क्लात!

बीहड़ गुप्त गुफा-वासी !
क्रूर ! जितेंद्रिय सन्यासी !
हवन-कुंड मे होम रहा है किस विनाश का कर बलिदान ?
निशा कलंकिनि का धर ध्यान !
देख, इधर दीपक बाला,
जला रही धक् धक् ज्वाला,
भाग शीघ्र सरपट, समेट तू चिरकुट-माया जाल विशाल।
अरे शून्य ! पागल सम्राट !!

भिक्षा

मेरे जीर्ण बदन मे प्यारे ! तू वह सुंदर स्फूर्ति भरे,
तेरी मोहन मंजु मूर्ति का रंग रंग जिससे ध्यान धरे।
मानस मे वह भव्य भक्ति दे, भव्य भाव जो उपजावे,
तेरे चरणों की सेवा से मन न कभी जो उकतावे।
दर्पण स्वच्छ रहे नित मेरा, छलों से न मैं कभी छलूँ,
सत्य-लता नित रहे हरेरी, सुख से फूलूँ और फलूँ।
प्राणों मे दे प्रणय पिपासा जो न प्राण धन को भूले,
सुधा पान कर प्रकृति प्रेम से प्रीति हिंडोले पर झूले।
नयनों मे दे वह व्याकुलता, इकटक रहूँ निरखता मैं,
रूप-माधुरी की कुछ मीठी बूँद होऊँ चखता मैं।
सुंदर स्वर दे, मधुर कंठ से तेरा गुण-गौरव गाऊँ,
पुण्य प्रीति दे, प्रेम-डोर मे तुझको बाँधूँ, हर्षाऊँ।

वह अनत गति दे गौरव मे, जिससे कुछ उपकार करूँ,
पतित बधुओं के हृदयों म उच्च भक्ति के भाव भरूँ।
वारवार दु ख से रोकर, रामकथा मत कहने दे,
तू स्वामी, ससार सिधु में, तृण-समान मत बहने दे।

तपस्वो

(१)

इस सु दर तप कानन मे,
हे ऋषि, हे वल्कल धारी!
यह फैल रही है कैसी,
आनद-ज्योति अति प्यारी?

(२)

आश्चर्य-भाव मे भूले,
अनुराग बाग के माली,
क्यों ध्यान-मग्न तुम बैठे,
भरकर फूलों से डाली।

(३)

आकाश ओऽम से झकृत,
अलि दल पराग रस पीता,
है गूँज रही त्रिभुवन में,
ऋषिराज! तुम्हारी गीता।

(४)

सुंदर फूलों की फुहियाँ,
झर झर तुम पर झरती हैं,
नतमस्तक वृक्ष खड़े हैं,
पत्तियाँ पवन करती हैं।

(५)

यह भक्ति, मुक्ति की पूजा!
हैं सूर्य-चंद्रमा किंकर,
आरती प्रकृति करती है,
गो धूलि-रूप धारण कर।

(६)

मैं खेल रहे बालक-सा,
मृग शिष्य बिनोद खिलौना,
आकाश श्वेत अंबर है,
दूर्वा-दल दिव्य बिछौना।

(७)

फिर जटा-जाल फैलाकर,
भगवान, भक्त हुलसाओ,
हम लोट रहे चरणों पर,
गुरुवर, गुरु-मंत्र सुनाओ।

(८)

वह सत्य प्रदीप जला दो,
हो अंत न कविता 'लौ' का,
भिड़ जाय सिंधु के तट पर,
कवि की सोने की नौका।

गोधूलि

विदुषी वधूटी वनिता नवेली
छविमय छटा-सी छहरा रही है,
नभ-वाटिका में सुमुखी अकेली
सौंदर्य चुंबन बिखरा रही है।
माधुर्य रथ पर चढ़ किन्नरी-सी
मृग-लोचनी-सी सज घूमती है,
नंगे-गगन में सुर-सुंदरी-सी
रवि वल्लभी पी मद झूमती है।
रंगीन बादल मुरछल मनोहर
मूच्छित पड़ा मद डुला रहा है,
झलमल झलक तारक-बंधु सुंदर
विलास को पास बुला रहा है।
चपला चमक घूँघट खोल झीना
सरला-सरीखी कुछ खेलती है,

सुप्रहेलिका-सा दुनिया नवीना
अभिसार मे सकट झेलती है।
यौवन-भरी यामिनि तम पिया से
उस पार नभ मे इठला रही है,
लिपटी रँगीले तरुवर हिया से
लतिका सलोनी मुसका रही है।
पत्ता कदम का झुक झूलता है
चपा कली मौन नहा रही है,
मृग दौड-सा, खजन भूलता है
बुलबुल सुधा धार बहा रही है।
अपराजिता दुर्बल श्याम छाया
लोटी पड़ी स्वर्ग-स्वदेश पग मे,
कवि की कृशागी मधु-काव्य-काया
मुदिता खड़ी कोमल-कात-जग मे।
लघु झिल्लियों को झनकार प्यारी
सुनता कृषक मौन तड़ाग-तट से,
प्रियवादिनी शाति वधू दुलारी
बरसा रही फूल दुकूल घट से।
रविहीन हो सूर्यमुखी रँगीली
कोमल कुसुम प्राण सुखा रही है,
ऐश्वर्य-तद्रा-युत छवि-छबीली
वन में हरी सेज बिछा रही है।

विकसित सुगधित अरविंद भीतर
  थका सलोना अलि सो रहा है,
पी मधु चपल भृ ग विमल कमल पर
  कुछ गुनगुना पुलकित हो रहा है।
दिन सो रहा चादर तान जय की
  विरही नयन नीर बहा रहा है,
मुरली बजा बालसखा विनय की
  सतप्त मन को समझा रहा है।
अनुरागिनी सोच सुहाग राते
  छिप सा रहा आलम में अँधेरा,
मथर हवा से कर गुप्त बाते
  कोकिल-युवक ढूँढ रहा बसेरा।
इकटक निरख चद्र उतावली सी
  नलिनी हृदय-मुक्त नचा रही है,
छत पर सहेली सँग बावली-सी
  सामतिनी रास रचा रही है।
बैठा पथिक क्लात किशोर मग मे
  चिरसगिनी नीर पिला रही है,
आनद से अजन आँज दृग में
  सधवा-वधू दीप जला रही है।
नीलम परी! निमल मूति बाँकी!
  पुजारिनी मगल तिथि सजाओ,

श्यामांगिनी ! हृद-वसुंधरा की
कर आरती शंख मधुर बजाओ ।

यौवन तरंग

(१)

उस दिन यौवन-मद में चूर,
झूमता इठलाता, इतराता,
प्रेमोत्फुल्ल हृदय से गाता,
मंद मंद मुसकाता,
अरुणोदय, निर्जन वन में, लता-कुंज में,
कोकिल के मृदु 'कुहु' कूजन में, मधुप पुंज मे,
प्राण सखी उन्मादिनी को मैं ढूँढ़ रहा था बनकर के उद्भ्रात,
कभी अश्रु पीता, गम खाता, रोता और विहँसता—
हुआ मैं कठिन क्लांत !
सहसा देख खडे सम्मुख ही सरल हृदय निज शिशु को—
उमड़ पड़ी निर्दयता मुझमें।
मैंने उसकी हँसी उड़ाई, ठेल मार्ग से उसको—
आगे बढा, घूमकर बोला—"घर जाओ अनजान।
क्या समझोगे मुझ पागल का तुम यौवन विज्ञान ?"
उसी समय उसकी सुंदर आँखों से,
झरने लगे विकल झरने से आँसू झर झर,

पत्र-सरीखा लगा काँपने उसका तन थर-थर-थर !
मैं चल पड़ा, कहा—"क्या अरे ! हीन हूँ ?"
शिशु ने समझा—मैं बालक हूँ और दीन हूँ ।

(२)

आज देख उसको ही सहसा युवक और मतवाला,
चीख़ उठा मैं—अदल बदल किसने कर डाला ?
चंपे का-सा रंग कहाँ से उसने पाया ?
सुंदरियों का वशीकरण किसने सिखलाया ?
दिन दिन उसके मुख पर कैसा है रस सरस चमकता ?
वह आनंद सिंधु मे बहता, गाता और बहँकता !
चला गया मैं निकट उसी के—
कहा—कि—"क्या करते हो ?
क्यों अपने सम इस दुनिया मे,
किसी को न गिनते हो ?
यहाँ अकेले खड़े खड़े क्या सुख पाते हो ?
अंधकार मे प्रेम प्रभा को फैलाते हो !"
बोल उठा वह—"यह है यौवन की सुखमयी तरंग,
अरे वृद्ध, तुम क्या समझोगे यह सुख, यह रस रंग।"
चकित हुआ मैं, यह क्या माया ?
मुझको अंधकार दिखलाया,
बस, लेकर सन्यास पहन ली मैंने कफनी,
वह तरंग अब ढूँढ रहा हूँ खोई अपनी ।

वसत-बिदा

शून्य कर कुसुमित कु ज कुटीर,
कपोलो पर ढुलका ऱ्ग-नीर ,
सिसकते, श्रति चचल चितचोर,
चले किस नदनवन की श्रोर ?
धरणि के श्रॉगन पर कर केलि,
ताड़ तुम अतुल विभव की बेलि ,
चयन कर सु दर सुमन, सुजान !
चले तुम कहाँ पीत पट तान ?
कदम तल, कल-कल यमुना-तीर,
न बजती मोहिनि वेणु अधीर ,
छटा की छूटी जाती धार,
सूखता सागर-सा ससार।
मिलन की दिव्य सभा कर भग,
धूलि से धोकर श्यामल अग ,
दलित द्रुम-लता विकल मन मार,
छोडती नवयौवन श्रृ गार।
न बहती अब प्रभात की वायु,
बिकच कलियों की बीती श्रायु ,
मधुप मूच्छित, कोकिल दिग्भ्रात,
पोंछती श्राँसू वन-छवि-क्लात।

तृणावलि का चुबन सचार,
हो रहा है अपूर्ण, सुकुमार!
निमत्रण निशि का चीन्ह कठोर,
चले किस अस्ताचल की ओर?
धधकती ग्रीष्म राह पर कौन?
बटोही गुजरेगा अब मौन?
आह, तलफा देगी मन प्रान,
दूर की रुनु झुनु रुनु झुनु तान!
तुम्हारे विना कठोर वसत!

सूर्य

अरे विद्रोही प्रलयकर!
दहकती किरणें फैलाकर,
धधक धक् धक् धक् धक् नभ से,
फूकता क्यों वन, ग्राम, नगर?
क्रोध से खोल तृतिय लोचन,
भस्म कर सुदर काम बदन,
नाचता किस भीषण जय से,
जटा फैलाकर शिव मोहन!
डोलता डगमग इद्रासन,
झुलसता नवयौवन जीवन,

प्रबल ! किस हिंसा के बल से—
चलाता खूनी आंदोलन ?
तोड़ विकसित मृदु सुमन सुन्दर,
सोख गंभीर सिंधु सुन्दर !
लगाता आग जगत में क्यों ?
लूक की लपटों में लुककर।
बसती सुख सौंदर्य कुचल,
कौन-सी ईर्ष्या में पागल !
चमकता है मरीचिका-सा,
पथिक के दग्ध प्रलय पथ पर।
युगांतर का प्रचंड उत्सव,
बंद है कोकिल का कलरव !
सिखाता है किस चिंता को ?
चिता-सा जल-जल रण-तांडव।
बोल जल्लाद ! अभय देकर,
स्वेद का अर्घ्यदान लेकर—
भागता है क्यों पश्चिम को,
हृदय के दिव्य कमल-दल कर !

हे कदंब !

हे कदंब, अब देख न पड़ता,
क्यों तुममें आनंद विकास ?

वन की छोटी पगडंडी के,
तट पर तुम क्या खड़े उदास ?
अट्टहास, उल्लास, नृत्य की,
कहाँ वह रही सरस हिलोर ?
छोड़ कृष्ण से नाता तुमने,
पकड़ लिया है किसका छोर ?
कहाँ गोपियाँ गूँथा करती,
अब नीचे फूलों के हार ?
खोए किस विकार से तुमने,
गौरव के अमूल्य उपहार ?
आस पास काँटों का वन है,
बंद हो गई पहली राह,
कहाँ बह रहा जुही-कुंद की,
कलियों से लावण्य प्रवाह ?
पागल-सी वह किधर बह गई,
नव यौवन की प्रबल उमंग ?
जरा जीर्ण तुम खडे हुए हो,
हा ! किस दस्यु समय के संग ?
वृंदावन का वही विपिन है,
किंतु कहाँ ऊपर की बात ?
शून्य रूप भावुक हृदयों मे,
करता रह रहकर आघात ।

फागुन बीत गया, होली मे,
    कहाँ ग्वाल बालों के गोल ?
मसले कहो कहाँ माधव ने,
    मोहिनियों के गोल कपोल ?
रग-भरी पिचकारी का अब,
    देख न पडता हाय, कमाल,
आसमान कब लाल हो गया,
    किस दिन ऐसा उडा गुलाल ?
सावन चला गया कितने ही,
    मस्त बजाते सुख की ढोल,
किंतु तुम्हारी हरी डाल पर,
    पडा न मोहन का हिडोल !
ऊँची ऊँची पैगों ने कब,
    लिया तुम्हारा मृदु मुख चूम ?
कहाँ गोपियों के झूलों की,
    दिखलाई दी अनुपम धूम ?
तरुवर, तुमको भूल गए क्यो,
    अहो, एकदम कृष्ण कठोर ?
चीर चुराकर छिपे किसी दिन,
    थे तुम पर ही माखन-चोर।
क्रीड़ास्थल यह कहाँ आज है,
    जिस पर था तुमको अभिमान ?

व्याकुल वशी का सुन पडता,
कहाँ आज आकुल आह्वान ?
दौड-दौडकर व्रज-वनिताएँ,
अब होती हैं कहाँ अधीर ?
शून्य पड़ा तल आज तुम्हारा,
स्मृति की केवल खिंची लकीर।
अगल बगल से सुन पड़ती है,
शेरों की खूँखार दहाड,
घूम रहे है रीछ मौज से,
चाट रहे शिकार पछाड।
झाँक रहे मृत्तिका गुफा से,
छिन छिन बच्चों सहित शृगाल,
डाल डाल मे तने हुए है,
सिर्फ मकड़ियों के ही जाल।
श्यामा जहाँ नाचती थी,
है वहीं उलूकगणों का वास,
रहा शेष क्या ? बाकी है बस,
तुममे रूप और इतिहास !
सन-सन सन सन सन चलता है,
अब केवल उन्मत्त समीर,
पत्र पत्र से सिहर सिहरकर,
उपजाते तुम मन में पीर।

फागुन बीत गया, होली म,
कहाँ ग्वाल-बालों के गोल ?
मसले कहो कहाँ माधव ने,
मोहिनियों के गोल कपोल ?
रग-भरी पिचकारी का अब,
देख न पड़ता हाय, कमाल,
आसमान कब लाल हो गया,
किस दिन ऐस्मा उडा गुलाल ?
सावन चला गया कितने ही,
मस्त बजाते सुख की ढोल,
किंतु तुम्हारी हरी डाल पर,
पड़ा न मोहन का हिंडोल !
ऊँची ऊँची पैगों ने कब,
लिया तुम्हारा मृदु मुख चूम ?
कहाँ गोपियों के झूलों की,
दिखलाई दी अनुपम धूम ?
तरुवर, तुमको भूल गए क्यों,
अहो, एकदम कृष्ण कठोर ?
चीर चुराकर छिपे किसी दिन,
थे तुम पर ही माखन-चोर।
क्रीड़ास्थल यह कहाँ आज है,
जिस पर था तुमको अभिमान ?

व्याकुल वंशी का सुन पड़ता,
कहाँ आज आकुल आह्वान ?
दौड़-दौड़कर व्रज वनिताएँ,
अब होती हैं कहाँ अधीर ?
शून्य पड़ा तल आज तुम्हारा,
स्मृति की केवल खिंची लकीर।
अगल बगल से सुन पडती है,
शेरों की खूँखार दहाड़,
घूम रहे है रीछ मौज से,
चाल रहे शिकार पछाड़।
झाँक रहे मृत्तिका गुफा से,
छिन छिन बच्चों सहित शृगाल,
डाल डाल मे तने हुए है,
सिर्फ मकड़ियो के ही जाल।
श्यामा जहाँ नाचती थी,
है वहीं उलूकगणा का वास,
रहा शेष क्या ? बाकी है बस,
तुममे रूप और इतिहास।
सन-सन सन सन-सन चलता है,
अब केवल उन्मत्त समीर,
पत्र पत्र से सिहर सिहरकर,
उपजाते तुम मन में पीर।

फिर भी नही टट पडते हो,
सोच रहे क्या खडे उदास ?
हे कदब, क्या दिखलाते हो,
अब अपना उन्माद विकास ?

महाकाल

आज प्रलय की महारात्रि मे,
गौरव के घमड मे चूर ,
कड़क कडक कड़-कड़ बिजली-सा,
ओ प्रचड विद्रोही क्रूर !
लेकर लाल मसाल चिता की,
किसी क्रोध का बनकर शाप ?
किसे खोजता है विप्लव-सा,
रणचडी रण मे चुपचाप ।
नग्न कृपाणों पर चमकाकर,
सूर्य विजय उन्माद प्रताप ,
सेनापति के रौद्र वेष में,
दौड़ दौड़ प्रलयकर पाप !
पटक पटककर विस्फोटक बम,
दुष्ट ! ग्राम-के-ग्राम उजाड़ ,

रक्त धूम आँखें कर क्रोधी !
    खेल रहा कैसे खिलवाड़ ?
दाँत पीस दुर्भिक्ष देश में,
    प्लेग महामारी के साथ ,
थर्रा कर मेदिनी बदन तू,
    हिला जटिल जीवन आकाश !
आशा की सुकुमार लता पर,
    तू तुषार के पत्थर डाल ,
पढता है किस अत शक्ति का,
    मत्र, मौन खूनी चडाल !
फैलाकर विद्रोह जटाएँ,
    नाच-नाचकर नग धड़ग ,
झलका रक्त त्रिपु ड भाल पर,
    कोटि कोटि फन काढ भुजग ।
झञ्झाहत सागर तरग सा,
    उमड़-उमडकर चारों ओर ,
चुनता है क्यों प्राण जवाहिर,
    चुपके चुपके चलकर चोर !
बीस कोटि का काढ कलेजा,
    श्रद्धानद व्रती को मार ,
ले प्रचड यम दड हाथ म,
    पाप पिशाचों को ललकार ।

लील लहू की लथपथ लाशें,
गिन कनिष्ठिका पर दिन मास,
अरे भयकर! खींच रहा है,
किस हिसा की भीषण-साँस ?

मेरी मृत्यु

(१)

लौटते न जिस पथ से कभी पथिक एक,
बहती जहाँ परम शाति की सुखी लहर,
उस पथ पर जब जायँगे सुकवि हम,
सुदर नवीन दिव्य पीत पट ओढकर।
परियाँ अनेक मुक्ति पथ साज, चित्रवत,
फूल बरसायगी मृदुल पग पग पर,
दौड़ आयँगे स्वतत्र-स्वागत-समूह बीच,
क्षीर सिधु छोड भगवान भक्ति रथ पर।

(२

भारत वसुधरा की सुकुमार देह पर,
वज्र गिर जायगा भयकर तडपकर,
कमला कमल पर देगी अश्रु बिंदु ढाल,
भारती की बीन गिर जायगी बिलखकर।
दारुण विलाप ध्वनि से पिघल गिरि प्राण,
बह जायँगे दृगों के अश्रु-स्रोत बक पर,

अवलोक ऋतुराज का अनत अत मौन,
सूख जायँगे सुमन दल तरु अक पर।

(३)

चद्र साथ तारक समाज शोक लिपि बाँच,
मर जायगा गगन-गोद बीच मन मार,
फट जायगा प्रकाड मजु मेघ-दल प्राण,
घट जायगा सुधा समुद्र मूर्च्छना निहार।
छिप जायगा अरुण अवसान दृश्य देख,
घिर जायगा उदास-कालकूट अधकार,
रुक जायगा प्रचड अभिमान राष्ट्र रण,
झुक जायगा विदीर्ण आत स्वर से दुलार।

(४)

कोटि कोटि फन काढ साँपिनी चिता नवीन,
लपट उड़ायगी हज़ार जल धक धक,
कल्पना कुहुक-जाल, छद गति नृत्य ताल,
भूल जायगी त्रिलोक-सु दरी सुहाग तक।
विश्व के विशाल रग मच पर कालिका-सी,
गिर जायगी यवनिका पलक से खिसक,
हाय-हाय की विलाप ध्वनि मे बिलायकर,
प्रलय पढेगी शाति पाठ मृत्यु से झिझक।

शव

(१)

इस धूलि मे धरा क्या, जिसमे पड़े लपेटे ?
मेरे सरल बटोही !
पथ ताप से भरा क्या, किस हेतु मौन लेटे ?
अनजान देश-द्रोही !

(२)

ममता कहाँ चली है, यौवन कहाँ टहलता ?
दृग बद हैं तुम्हारे।
सूखी कुसुम कली है, भौरा नही मचलता,
उत्साह लुप्त सारे।

(३)

भर कौन खेद मन मे, किस सिधु-मध्य-भोगी,
तरणी डुबा रहे हो ?
कैसे सघन विजन में, सन्यास ले वियोगी !
जोवन उबा रहे हो ?

(४)

मुरझा रही तुम्हारो, ऐश्वर्य बेलि बोई,
प्याली शराब हीना।
सुरभित कनेर-क्यारी, बैठा उजाड़ कोई।
लूटा नया नगीना।

(५)

बहती न गीत-लहरी, स्वर हैं अपूर्ण मन के
चचल कहाँ इशारे ?
कैसी अशांति गहरी, क्यों तुम बने गगन के
विक्षिप्त तुच्छ तारे ?

(६)

उस पार से बुलाती, गो धूलि पचरंगी,
किस सोच में पडे हो ?
बुलबुल बिहाग गाती, सोता मयूर सगी।
किस तीर तुम खड़ हो ?

(७)

चुनता न हस मोती, काद्बरी मलीना,
भू रक्त रजिता है।
उड़ती नही कपोती, वह आज पख-हीना,
दुर्भाग्य सचिता है।

(८)

कर टूक-टूक जीवन, तरुणी नवीन बाला
मूर्च्छित उधर पड़ी है।
छू लो अछूत ! दामन, भर दो सुहाग-प्याला,
यम-यातना कड़ी है।

(९)

मा का उदास क्रदन, सुनते नहीं बधिर ! क्यों ?
आँखे अषाढ सी हैं।

कोई न सूझते फन, घरे पडा तिमिर क्यों ?
घडियाँ विपत्ति की हैं।
(१०)
पागल पिता बिलखता, ज्वाला धधक धधकती,
है मौत का तमाशा।
बेटा उधर तडपता, बेटी इधर सिसकती।
साथिनि बनी निराशा।
(११)
तुम रम रहे जहाँ हो, उस देश से न कोई,
क्या भूल लौटता है ?
कोकिल ! कहो कहाँ हो, भवनिधि अमूल्य खोई !
हा ! खून खौलता है।
(१२)
झूठा बना स्व बाना, अव्यर्थ सिसकियों से।
दिल विश्व का दलेंगे।
कफनी उढा पुरानी, कस अग रस्सियों से।
ले घाट पर चलेंगे।
(१३)
रोकर कुटिल पडोसी, मृदु फूल सी तुम्हारी
यह देह फूँक देंगे।
झुक जायँगे सदोषी, क्या मार हम कटारी।
अनुताप मे मरेंगे ?

चिता

मैं मायाविनी महाकाली, मेरा क्या जाने, कौन ढग ?
द्रुत आँधी, प्रबल झकोरों मे, लपटों मे दिखलाती उमग ।
फिरते निषाद-यम आस पास ,
भय औ विराग इन सतरियों का छीन न सकते यह विलास ।
रोते हैं हाहाकार विषम, है व्यर्थ विनय, है व्यर्थ शोर ,
सुनकर भी किसी की न सुनती, पाषाण-हृदय इतना कठोर ।
मैं ही उत्साह प्रमोद लीन ,
छू-छूकर चिटक चिटक जलती, लेती सबके सुख छीन छीन ।
उज्ज्वल भविष्य, मानस दीपक, अधी का एक किशोर लाल ,
उस ओर पड़ा, चिंतित अनिष्ट, है लाया उसको खींच काल ।
मै लूँगी वह सुकुमार झटक ,
पल मे कर राख, हँसूगी मैं, रोवेगी मा सिर पटक-पटक ।
मैं छलनामयी महाकुटिला, मुझको भाते खटराग राग ,
मैं जला रही हूँ धक् धक् धक्, सधवा बाला का सुख सुहाग ।
कितनी भीषण, दृढ क्रूर दृष्टि ,
जलती है वह ज्वाला अनत, जब तक अवशिष्ट अनाथ सृष्टि ।
खा चुकी मित्र के परम मित्र, है जलता मुझमें मृतक एक ,
चिंता में चूर-चूर मानव जीवित होकर भी क्या विवेक—
मैं नहीं छोड़ती ओर छोर ,
जो सुत की करता पिता श्राद्ध, यह मेरी ही करुणा कठोर ।

मानिनी, कामिनी मृग-नयनी, दासानुदास जिसका विलास,
स्वरमय कोकिल, दृगमय कुरग, गतिमय कु जर का विपिन वास।
मुखमय सुधांशु मदिर अनत—
वह अधम राक्षसी-सी, भय-सी, है पड़ी घृणित-सी पास, हत !
कवि की भविष्य कविता लेकर, धू धू जलती मै बार-बार,
रो रो मरती छविमयी प्रकृति, है केवल हाहाकार प्यार।
ससार देखता है इकटक,
मम हँसती लाल-लाल लपटे, हँसता शरीर, हँसता नाटक।
विश्राम न लेती मैं पल भर, बीते कितने ही युग-समान,
मैं धरा-गोद मे हँसती हू, करती हूँ सूखा रक्त पान।
निशि मे निर्जनता मे महान !
सोती हूँ मैं न कभी सुख से, गाया करती नित प्रलय-गान।
कैसी कराल हूँ मै सबला, क्या है विरागमय यह विवेक ?
हे मूढ, पूछ जी विलमन से, कैसा अखड अभिषेक-नेक ?
वर ध्यान देख मम भव्य भाव,
जल अधकार, जीवन बहता, आलोक हीन ससार-नाव।
मैं पावस घन मे भीग भीग, हाती हूँ प्रबल प्रज्वलित अति,
फैलाती शारदा गम में छवि, हेमत में न बनती दुगति।
करता मुझसे प्रिय ग्रीष्म प्रेम,
हिम फेंक, शिशिर खा घोर हार, पूछता मित्र बन कुशल-क्षेम।
मैं नहीं जानती किस वन का, करके मधुमय ऐश्वय अत,
आता है मदन-तुल्य सुदर, इस दुनिया में नूतन वसत।

मेरा सुनकर सदेश त्रास ,
देता प्रिय पोत निमत्रण लिपि, जग सावधान ! है मृत्यु पास ।
मम रोष देख आकाश नील, काँपता नित्य थर-थर समीर ,
है दीर्घ साँस कितनी भीषण, लहराता सप्त समुद्र-नीर ।
मरुभूमि शुष्क, अति तीव्र चाह ,
हिंसामय शिखा जला लोहित रचती कैसा षड्यन्त्र, आह !
मत मिथ्यामयी मुझे तू कह, समझ मेरी कुल रीति रस्म ,
बलशाली, गुणी, क्रूर, कोविद, करती रहती मैं रोज भस्म ।
तू सुने तृप्त, मेरा गायन ,
चिर दिन जलती, दशकधर-से लकापति लील गई डायन ।
फिर भी मैं हूँ कितनी पवित्र, क्या इसे सुनेगा तू अजान ,
मेरे शासन मे धनी, रक, चाडाल, विप्र, दुर्बल समान ।
हर लेती सबके शोक ताप ,
बन भयकरो-सी कब देती, मै पाप पुण्य को प्रबल शाप ।
क्या मेरी गोदी में शिशु की मुसकानों के झडते प्रसून ,
क्या प्रबल सूरमा शव मे अब, हैं कही उबलते गर्म खून ?
कितनी विचित्रता है महान ,
जो नित्य जलाते थे जग को, वे आज जल रहे हैं प्रधान ।
खाती जाती न अघाती हूँ, छूँछा ही रहता उदर-कुड ,
हैं श्मशान में पड़े शिथिल, अब भी कितने ही मृतक झुड ।
है लगी उन्हीं की ओर दृष्टि ,
मन कहता—क्रूर सृष्टि पर क्यों होती है शीघ्र न वज्र-वृष्टि !